THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
133

SANSKRIT RACHANĀNUVĀDA ŚIKṢAKA

BY

ŚRĪ VISVEŚVARA, Siddhānta Śiromaṇi

With a Foreword by

ĀCHĀRYA INDIRĀ RAMANA ŚĀSTRĪ

Edited by

PANDIT ŚRĪ ANANTARĀMA ŚĀSTRĪ VETĀL, Sāhityāchārya

Re-edited with Appendix

by

JĀNAKĪDEVĪ PĀTHAKA

Sanskrit Professor Murari Khatri Inter College, Agra

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1970

सम्मतयः

श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्यदार्शनिकसार्वभौमसाहित्यदर्शनाद्या-
चार्यतर्करत्नन्यायरत्न

श्री गोस्वामि-दामोदरशास्त्री

प्रथमपरीक्षापाठ्याध्ययनयोग्यानुपचिकीर्षुणाऽतिसरलरीत्या निबद्धस्य 'संस्कृतरचनाऽनुवादशिक्षकस्य' प्रथमभागमापाततोऽवेक्ष्याद्यत्वे प्रचञ्चूर्यमाणाशुद्धिबहुलमुद्रितपुस्तकापेक्षयाऽत्यद्भुतमिमानक्षानालोच्याभिमतपूर्त्तयेऽलङ्कर्मीणोऽयं निबन्ध इति विश्वसिमि।

महामहोपाध्याय

श्री हरिहरकृपालु द्विवेदी

प० श्रीविश्वेश्वरसिद्धान्तशिरोमणिमहोदयेन निर्मितमन्वितार्थनामक संस्कृतरचनाऽनुवादशिक्षकस्य ग्रन्थं सकलमविकलमवालोकिषि। संस्कृतरचनाकौशलं कामयमानानां कृते उपादेयैर्विषयैर्नितरामसुमपूपुरत् मः। यद्यपि शब्दशरीरेण नायमतिदीर्घस्तथाऽप्यर्थात्मगुणेन गरीयानेव, प्ररोचनाप्रत्ययो मा भूदित्यस्मदीयगुणगणवर्णनं न व्यस्तारिषि। परिशीलितोऽयं ग्रन्थः स्वयमेव स्वं सारं प्रकाशयिष्यतीति न तिरोहितम् प्रेक्षावतामित्यतोऽपि बहुवाग्विन्यासमत्र समुपेक्षिषीति शिवम्।

महाशाब्दिक

श्री सभापतिशर्मोपाध्यायः

श्रीविश्वेश्वरसिद्धान्तशिरोमणिना सम्पादितोऽयं 'संस्कृतरचनानुवादशिक्षक' संस्कृतभाषाजिज्ञासूनां कृते समुपकरिष्यन् स्वीयोपयोगेन संस्कृतज्ञान् सन्तोषयन्नतितरां ख्यातिमाप्नुयादिति सम्भावयति।

महामहोपाध्याय

श्री चिन्नस्वामिशास्त्री

'संस्कृतरचनानुवादशिक्षक' रूपो लघुग्रन्थो मया समग्रोऽवलोकितोऽवधानेन सह। ग्रन्थकृता च प्रथम-परीक्षायाः कृते विद्यार्थिनां यावत् सारल्यं सौकर्यं च सम्पादयितुं शक्यते तावत्ते तस्मै सुप्रयतितम्। विश्वसिमि तत्र तेन साफल्यमवाप्तमिति। एतादृशः तत्परीक्षोपयोगी ग्रन्थोऽतिविरलः एवाऽद्य यावत् प्रकाशं गमितः। अतो ग्रन्थेन समनुग्रन्थमामकं मतितरामन्तरङ्गम्। माणवकाश्चैनं यथावदुपयुज्याऽऽत्मीयक्लेशनिवारणद्वाराऽनुत्तमं फलमवाप्नुयुः अध्यापयितारश्च तत्र समुचितं साहाय्यमाधाय कर्तुं कारयितुञ्चोत्साहमभिवर्धयेयुरिति सुदृढं विश्वसिमि।

श्री परमानन्द शास्त्री

(प्रधानाध्यापक–श्री राधाकृष्ण सं० महाविद्यालय, खुर्जा, बुलन्दशहर)

अस्य 'संस्कृतरचनानुवादशिक्षकस्य' रचनया प्रथम-परीक्षा दित्सूनां छात्राणां महत्काठिन्यमपाकरोदस्य पुस्तकस्य सुयोग्यो लेखकः। संस्कृतैरपि प्रथमपरीक्षार्थिभिस्तदध्यापकैश्चास्य पुस्तकस्य यथेष्टं प्रचारं विधाय लेखकपरिश्रमस्सफलो विधेयः। इदं पुस्तकं प्रथमपरीक्षार्थिनां कृतेऽतीवोपयोगीति मे सरम्भ उक्तिः।

श्री हरिदत्त शर्मा

(प्रिन्सिपल–गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, सहारनपुर)

'संस्कृतरचनानुवादशिक्षक' प्रतिपुस्तं मया व्यलोकि। अद्यावधि प्रथम-परीक्षोपयोगि, ईदृग पुस्तकं न मल्लोचनपथमवतीर्णम्। एतत्पुस्तकं प्रथमपरीक्षां दित्सूनां महत्साहाय्यं विधास्यतीति मे निश्चितं मतम्। अहं हृदयेनाऽस्य साफल्यं कामये।

श्री शिवकुमारशास्त्री

(प्रधानाध्यापक —संस्कृतमहाविद्यालय, आगरा)

लोचनगोचरीकृतो मया 'संस्कृतरचनानुवादशिक्षक' प्रथमपरीक्षार्थिनां कृते यत्सत्य शिक्षक एवाऽयम्। एनमधीत्य, अध्यापकसाहाय्य विनाऽपि तरीतु शक्यो विद्यार्थिभि प्रथमपरीक्षोदधि ।

श्री कैलाशचन्द्रशास्त्री

(प्रधानाध्यापक —श्री स्याद्वादजैनमहाविद्यालय, काशी)

काशीस्थ हरिदाससंस्कृतग्रन्थमालात प्रकाशित 'संस्कृतरचनानुवादशिक्षक' समवलोकितो मया। अस्या ग्रन्थमालाया सञ्चालका संस्कृतविद्यानुरागिण सन्ति । त संस्कृतोद्यान विविधग्रन्थकुसुमाकरैर्भूषयितु सर्वदैव सन्नद्धा । यद्विना संस्कृतोद्यानमपरिपूर्ण प्रतिभाति ते तत्र तदेव समारोपयन्ति । तदर्थञ्चायमेव संस्कृतरचनानुवादशिक्षक' प्रमाणीभूत । अस्य साहाय्येन प्रथमपरीक्षार्थिन प्रथमपरीक्षातरङ्गिणी तरितु समर्था भविष्यन्तीति मे मति ।

SURENDRA NATH SHASTRI, M A LL B

Principal, Sanskrit College, Indore

I have gone through the book by name 'Sanskrit Rachananuvada Shikshaka' written by Pt Vishweshwar Siddhanta Siromani and published by you The book opens with small sentences and with gradual introduction of the Sanskrit grammatical technicalities it ends with a few select exercises for translation from and into Sanskrit The book will indeed be useful to the beginners for whom it is primarily meant Though the Scheme of the book is outlined almost similar to Dr Bhandarkar's Margopadeshika, still your book has a variety of forms especially causals, Potential participles and specimen letters which will make the students more familiar to the classical Sanskrit I congratulate you for the publication and the author for the compilation

प्राक्कथन

संस्कृत भाषा संसार की प्राचीनतम भाषाओं में अन्यतम है और यही सब से प्राचीन है क्योंकि विश्ववाङ्मय का सब से पुराना ग्रन्थ ऋग्वेद संस्कृत भारती का ही सर्वोत्तम ज्ञान विज्ञानकोश है। संस्कृत संसारव्यापी भाषा है, यह भूगोल के प्राय सभी सभ्य देशों में प्रचरित और सुप्रथित है, अत इसे विश्वभाषा कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। आर्षयुग के साक्षात्कृतधर्मा महर्षियों के अपरोक्ष अनुभवों से लेकर आधुनिक काल के बड़े बड़े भारतीय तथा अन्यदेशीय मनीषियों के सद्विचारों से ओत प्रोत होने के कारण संस्कृत वाङ्मय का महत्व लोकोत्तर हो गया है। भारतीय पुरातत्व के विषय में पूर्ण और यथार्थ जानकारी के लिये तो संस्कृत ही एकमात्र असन्यसाधारण साधन है, अत यह न केवल भारतवर्ष के ही लिये प्रत्युत सारे संसार के लिए भी ज्ञानवर्धक सर्वज्ञानमय वाङ्मय है, यही कारण है, कि संसार के अन्यान्य देशों के विमर्शक विद्वान् संस्कृत वाङ्मय के प्रत्येक अङ्ग का अध्ययन और अनुसन्धान बड़े मनोयोग से करते हैं। विदेशीय विद्वानों ने वेदों से लेकर पञ्चतन्त्र ऐसे साधारण नीति ग्रन्थों तक के सुसम्पादन, अनुवाद, व्याख्यान, सुसंस्करण और प्रकाशन अपने घोर परिश्रम और असीम अर्थव्यय से किये हैं। इधर भारतवर्ष में भी इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ चेष्टायें हुई हैं, पर, इस देश को अपने विशेष सांस्कृतिक वाङ्मय संस्कृत के लिये जितना प्रयत्न करना चाहिये, उतना अवश्य नहीं हुआ है। यद्यपि उपर्युक्त कारणों से संस्कृत विश्वभाषा हो गई है, तथापि भारतीयों—विशेषत हिन्दुओं का इससे धार्मिक, सांस्कृतिक और साक्षात् सामाजिक सम्बन्ध है, साथ ही भारत के प्रत्येक हिन्दूप्रधान प्रान्त की भाषा संस्कृत की ही पुत्री हैं; बङ्गला, मराठी गुजराती और हिन्दी आदि भाषाओं पर आपातत दृष्टिपात करने से भी यह बात स्पष्ट ज्ञात हो सकती है, इन भाषाओं में सम्प्रति भी प्रतिशत नब्बे संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग होता है। अब तो हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा होने जा रही है, इसे धन-धाम और सौन्दर्य-सम्पत्ति संस्कृत से ही मिली है, और आगे भी संस्कृत से ही इसकी श्रीवृद्धि और समृद्धि हो सकती है। इधर 'हिन्दुस्तानी' के

आन्दोलन से हिन्दी के लिये जो भय उपस्थित हो गया है, उसके कारण, हिन्दी की रक्षा का भाव भी हिन्दीभाषियों में प्रबल हो उठा है, और सब लोग यही अनुभव कर रहे हैं कि संस्कृत के 'तद्भव' और 'तत्सम' शब्दों के प्रचुर प्रयोग तथा प्रचार के द्वारा ही राष्ट्रभाषा हिन्दी की रक्षा और अभिवृद्धि की जा सकती है। इन कारणों से यह निःसन्देह सिद्ध होता है कि हिन्दूधर्म, हिन्दूसंस्कृति, प्रान्तीय भाषाओं और हिन्दीभाषा की एक ही साथ रक्षा और समृद्धि के लिये संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन और प्रचार करना नितान्त अपेक्षित और परम आवश्यक है। पर, इस उद्देश्य की पूर्ति सुशिक्षा के द्वारा ही हो सकती है, और सुशिक्षा के लिये सहज तथा सरल शिक्षापद्धति का अवलम्बन करना अधिक उपयुक्त और अल्पायास में समधिक फलप्रद हो सकता है। सन्तोष और प्रमोद का विषय है कि संस्कृत शिक्षापद्धति के सुधार की ओर भी संस्थाओं तथा विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है और अनुदिन हो रहा है।

किसी भी भाषा के द्वारा शिक्षा पाने के लिये सब से पहले उस भाषा पर कब्जा करना आवश्यक होता है, क्योंकि भाषा के द्वारा ही, धर्म, दर्शन, विज्ञान इतिहास, साहित्य आदि विविध विषयों का अपेक्षित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। भाषाशिक्षण के लिये भाषाविनिमय, एक भाषा के शब्दों या वाक्यों को दूसरी भाषा के शब्दों या वाक्यों से बदलने, परिवर्तित या अनूदित करने, की मुख्य आवश्यकता है, इसकी पूर्ति के लिये 'अनुवाद' पद्धति का आविष्कार, प्रायः संसार की सभी भाषाओं में हुआ है, और इस भाषाविज्ञान के युग में उसकी उन्नति और परिष्क्रिया दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। हर्ष की बात है कि संस्कृतशिक्षण के लिये भी आधुनिक युग की इस परमोपयोगी पद्धति से काम लेने की प्रवृत्ति लोगों में जागृत हुई है। 'आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है', अतः जब संस्कृत से हिन्दी में परस्पर अनुवाद करना सीखने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है, तब विद्वानों ने भी विविध इतिकर्तव्यतामय, स्वल्पश्रम में अधिक लाभप्रद, अनुवाद-ग्रन्थों के प्रणयन में यथेष्ट ध्यान दिया है, और विनेयों, छात्रों की वर्ग-(श्रेणि) योग्यता के सामय, उपयुक्त, पुस्तकें

प्रस्तुत कर रहे हैं। सिद्धान्तशिरोमणि पण्डित श्रीविश्वेश्वर शास्त्री ने हाल में इधर एक ऐसा ही स्तुत्य प्रयत्न किया है, प्रस्तुत पुस्तक आपके उसी प्रयत्न का सर्वाङ्गसुन्दर फल है। पुस्तक की उपयोगिता और उपादेयता के विषय में हमें अधिक कुछ भी नहीं लिखना है, स्वयं लेखक ने भूमिका में इसका संक्षिप्त परिचय दिया है; सब से अधिक, यह पुस्तक ही स्वयं अपना परिचय दे रही है, हमें पूर्ण आशा और विश्वास है कि यह पुस्तक अपने उद्देश्य में यथेष्ट सफल होगी, अतः संस्कृत और साथ ही हिन्दी के विद्यार्थियों को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये। हमारा तो यहाँ तक ख्याल है कि संस्कृतमूलक बंगला, मराठी, गुजराती आदि अन्यप्रान्तीय भाषाओं के द्वारा संस्कृत सीखनेवाले और अंग्रेजी के साथ संस्कृत पढ़नेवाले छात्रों के लिये भी ऐसी अनुवादपुस्तकें बहुत सहायक हो सकती हैं, क्योंकि संस्कृतमूलक हिन्दी के साथ तन्मूलक प्रान्तीय भाषाओं का सहज सुबोध सम्बन्ध है। अस्तु, 'संस्कृतरचनाऽनुवादशिक्षक' इस अन्वर्थ नामवाली पुस्तक के लेखक उपर्युक्त पण्डित जी धन्यवादार्ह हैं।

यहाँ इस पुस्तक के प्रकाशन के सम्बन्ध में भी दो बात कहना आवश्यक है। वाराणसेय चौखम्बा संस्कृत सीरीज, उससे सम्बद्ध चौखम्बासंस्कृतग्रन्थमाला और तदन्तर्गत कई ग्रन्थमालाओं का परिचय देश-विदेश के प्रायः सभी संस्कृत प्रेमियों को होगा। जर्मनी आदि वैदेशिक स्थानों में भी चौखम्बा-संस्कृतग्रन्थमालाओं की पुस्तकें मगाई जाती हैं। नवीन युग के बहुत से ग्रन्थकारों ने इन मालाओं में प्रकाशित ग्रन्थों से यथाप्रयोजन उद्धरण लेकर उनका हवाला दिया है। इन बातों से इस संस्था की व्यापकता, लोकप्रियता तथा उपादेयता स्वतः सिद्ध है। संस्कृत वाङ्मय के पुनरुज्जीवन में जैसी प्रकाशनसंस्थाओं की आवश्यकता है, उनमें काशीपुरी की यह प्रकाशनसंस्था भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इसके द्वारा संस्कृत के प्राचीनतम और दुर्लभ सद्ग्रन्थरत्न समय समय पर, प्रकाशित और देश-विदेशों में प्रचरित होते आये हैं। अवश्य ही वैसे प्रकाशनों से चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थप्रकाशन संस्था के अध्यक्ष और सञ्चालकों को विशेष घाटा नहीं, तो नफा भी नहीं हुआ होगा, क्योंकि एक तो संस्कृत के उच्चविषयक

ग्रन्थों के पाठकों की संख्या ही कम है, दूसरे संस्कृत के अध्येताओं में प्रायः निर्धनता होती है, जिसे देखकर ही, 'सरस्वती से लक्ष्मी के वैर' की बात प्रसिद्ध हो गई है, सुतरां भारतीय संस्कृतज्ञों में क्रयशक्ति पर्याप्त नहीं है, ऐसी दशा में भी चौखम्बा संस्कृत संस्था के सुयोग्य अधिकारियों ने अपना अध्यवसाय और साहस नहीं छोड़ा है, इसके लिये वे भूरि भूरि प्रशंसा के पात्र हैं। इधर कई वर्षों से इस संस्था ने परीक्षोपयोगी सामयिक ग्रन्थों का सस्ता प्रकाशन भी किया है, और अब भी कर रही है, प्रस्तुत ग्रन्थ 'संस्कृतरचनाऽनुवादशिक्षक' ऐसे ही प्रकाशन का एक सुपरिणाम है। कागज़, छपाई, सफाई आदि के सुन्दर होने पर भी यह संस्था अपेक्षाकृत सस्ते दाम में पुस्तकें देती है, जिससे, निर्धन संस्कृतज्ञों का कुछ उपकार और सुविधा हो जाती है, अतः इस संस्था की पुस्तकों को आवश्यकता के अनुसार अपनाकर संस्कृतप्रेमी सज्जन इसका उत्साह बढ़ा सकते हैं। यदि संस्कृत की परीक्षासंस्थायें-विशेषतः बिहारोत्कलसंस्कृत समिति, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज काशी, और हिन्दूविश्वविद्यालय काशी-प्रभृति हिन्दीप्रान्तीय परीक्षासंस्थायें—इस पुस्तक को अपनी परीक्षा के पाठ्यक्रम में रख दें, तो रचना और अनुवाद के विषय में छात्रों का उपकार हो, और प्रकाशक का उत्साह भी बढ़े; जिससे पुनरपि ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन और प्रचार के सत्कार्य में लोगों की अधिकाऽधिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन और प्रगति मिले। किमधिक विज्ञेषु ? इति शम्।

सौर ति० ६-११-९७
दिनांक १८-२-४१
श्रीकाशी विद्यापीठ

इन्दिरारमण

भूमिका

प्रथमा परीक्षा के छात्रो को अनुवाद का अभ्यास करने-कराने के लिए उपयुक्त तकों का प्राय अभाव ही है, जिसके कारण छात्रो और अध्यापको दोना कठिनाई होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए अनुवाद की एक ी प्रारम्भिक पुस्तक की आवश्यकता थी जो बिलकुल प्रारम्भ से अनुवाद के यमो को सिखा सके और उन नियमो के आधार पर अनुवाद करने के अभ्यास सहायता दे सके। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रस्तुत पुस्तक की रचना गई है। इसमे दो शब्दा के प्रारम्भिक वाक्यो से लेकर प्रथमा परीक्षा के नुरूप उत्तम योग्यता पहुँचाने वाले बडे-बडे वाक्यो और प्रकरणो के अनुवाद रने के नियम अत्यन्त सरलरूप मे समझाए गए है और तदनुसार अनुवादार्थ भ्यास दिये गये है। अभ्यासार्थ वाक्यो मे आए हुए कठिन शब्दो के संस्कृत ानने का प्रबन्ध भी साथ म ही है। जिससे अनुवाद करने म अत्यन्त सरलता ोगी। पुस्तक के अन्त म अभ्यासार्थ संस्कृत तथा हिन्दी के ९० प्रकरण दिए ए हैं। प्रत्येक प्रकरण एक दिन के अभ्यास के लिए पर्याप्त है। इसलिए उसे क दिन म पूरा करना चाहिए। संस्कृत और हिन्दी के प्रकरण पर्याय से दिए ए हैं जिससे एक दिन संस्कृत से हिन्दी और दूसरे दिन हिन्दी से संस्कृत में नुवाद कराया जा सके। इस पुस्तक के पाठो मे दिए हुए नियमो को समझा र और कठिन शब्दो को याद कराकर ही पाठो मे अभ्यासार्थ दिए हुए वाक्यो ा अनुवाद कराना चाहिए। तभी पुस्तक का प्रयोजन सिद्ध होगा और विद्यार्थियो ो यथार्थ लाभ होगा। अन्यथा केवल वाक्य अनुवादार्थ दे देने से नियमो से नभिज्ञ होने से विद्यार्थियो की न योग्यतावृद्धि होगी और न उन वाक्यो का नुवाद ही वे सरलता से कर सकेंगे। अत एव आशा है इन निर्देशो को ध्यान रखते हुए छात्र और अध्यापक अनुवाद का अभ्यास करेंगे और करावेंगे, जससे छात्रो की योग्यतावृद्धि होगी और लेखक का श्रम भी सफल होगा।

यह पुस्तक न केवल प्रथमा परीक्षा के लिए, अपितु प्राज्ञ, हाई स्कूल तथा ड़वा स आदि परीक्षाओ के लिए भी पूर्णतया उपयुक्त है। आशा है इस पुस्तक ा प्रचार होगा, और संस्कृत के विद्यार्थी इससे यथेष्ट लाभ उठावेंगे।

रुकुल वि० वि०, वृन्दावन
माघ पूर्णिमा, १९१७

निरञ्जनेश्वर, सिद्धान्तशिरोमणि

परिवर्द्धित संस्करण

परमात्मा की कृपा से प्रस्तुत पुस्तक का यह परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित हो रहा है। अध्यापकों तथा छात्रों ने इसे अपना कर हमें आभारी किया है। प्रारम्भ में यह पुस्तक प्रथमा परीक्षार्थी छात्रों की दृष्टि से लिखी गई थी। अत: सन्धि, शब्दरूपादि नहीं दिये गये थे। क्योंकि वे छात्र लघुकौमुदी पढते ही हैं। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक हाई स्कूल के छात्रों के उपयोग में भी आ गई है। अत सन्धि, शब्दरूपादि कतिपय विषय आवश्यक समझ कर इस संस्करण में बढा दिये गये हैं। इन विषयों में कुछ नवीनशैली का आश्रय लिया गया है। छात्रों को उससे अधिक लाभ होगा।

प्रस्तुत संस्करण के परिशिष्ट की लेखिका श्री पण्डितवर्य शंकरदेव जी पाठक की धर्मपत्नी श्री जानकीदेवी जी पाठक हैं। आप अपने जीवनकाल में २० वर्ष तक आगरा नगरस्थ मुरारी सत्री इंटर कालेज व दयालबाग में संस्कृताध्यापिका का कार्य सम्पादन करती रही हैं और सम्प्रति वृन्दावन हाई स्कूल में काम कर रही हैं व इस विषय की आप अनुभवी हैं। आपने ही प्रस्तुत संस्करण का सम्पादन भी किया है।

—विश्वेश्वर

॥ श्री ॥

संस्कृतरचनाऽनुवादशिक्षकः

प्रथमः पाठः

क्रियापदानि

वर्त्तमानकालः (परस्मैपदम्)

प्रथमगण (भ्वादि) :—	षष्ठगण (तुदादि) :—
गच्छति = वह जाता है।	सृजति = वह बनाता है।
नयति = वह लेजाता है।	लिखति = वह लिखता है।
पतति = वह गिरता है।	विशति = वह घुसता है।
भवति = वह होता है।	स्पृशति = वह छूता है।
रक्षति = वह रक्षा करता है।	दिशति = वह बताता है।
वदति = वह बोलता है।	इच्छति = वह इच्छा करता है।
वसति = वह रहता है।	पृच्छति = वह पूछता है।
सरति = वह सरकता है।	मुञ्चति = वह छोड़ता है।

'गच्छति' इत्यादि जिन रूपों में 'ति' प्रत्यय लगा हो उन्हें वर्तमान के तृतीय पुरुष (प्रथम पुरुष) का रूप समझना चाहिए।

'ति' यह वर्तमान के तृतीय पुरुष (प्रथम पुरुष) के एकवचन का प्रत्यय है और इसके साथ स (वह) अथवा कोई संज्ञाशब्द प्रयुक्त किया जाता है। (स) के न होने पर भी उसका अर्थ वह समझ लिया जाता है।

स इच्छति = वह चाहता है।   राम इच्छति = राम चाहता है।

गच्छति (गच्छ् + अ + ति)	सृजति (सृज्+अ+ति)
नयति (नय् + अ + ति)	लिखति (लिख्+अ+ति)
पतति (पत् + अ + ति)	विशति (विश्+अ+ति)
भवति (भव् + अ + ति)	स्पृशति (स्पृश्+अ+ति)
रक्षति (रक्ष् + अ + ति)	दिशति (दिश्+अ+ति)

'गच्छति' तथा 'सृजति' इत्यादि रूपों में धातु के आगे 'अ' लगाया जाता है। यद्यपि दोनों प्रकार के रूपों में अ लगाया गया है तथापि इनमें थोड़ा भेद है। 'नयति' आदि रूपों में धातु के आगे अ लगने पर धातु में गुण हो जाता है परन्तु 'सृजति' आदि में अ लगने पर भी गुण नहीं होता है।

जिन धातुओं में गुण होता है वे प्रथम गण तथा जिन में गुण नहीं होता वे षष्ठ गण में समझी जाती हैं।

नयति = (नी + अ + ति, नय्+अ + ति = नयति) यहाँ नी को गुण हो कर ने तथा ने से नय बना है।

सृजति = (सृज + अ + ति = सृजति) स्पृशति = (स्पृश् + अ+ति = स्पृशति,) यहाँ गुण नहीं होता। यदि सृज आदि धातु प्रथम गण की होतीं तो सर्जति, स्पर्शति आदि रूप होते।

धातुकोष

प्रथमगण (भ्वादि) :—	षष्ठगण (तुदादि) :—
गम् (गच्छ्) = जाना।	सृज = बनाना, निर्माण करना।
नी (नय्) = ले जाना।	लिख् = लिखना।
पत् = गिरना।	विश् = घुसना, प्रविष्ट होना।
भू (भव्) = होना।	स्पृश् = छूना।
रक्ष् = रक्षा करना।	दिश् = बताना।
वद् = बोलना।	इष् (इच्छ्) = चाहना।
वस् = रहना, निवास करना।	प्रच्छ (पृच्छ्) = पूछना।
सृ (सर्) = सरकना।	मुच् (मुञ्च्) = छोड़ना।

द्वितीयः पाठः

वर्त्तमानकाल (प्रथमपुरुष) :—

वसतः = वे दोनों रहते हैं।	वसन्ति = वे सब रहते हैं।
वदत = वे दोनों बोलते हैं।	वदन्ति = वे सब बोलते हैं।
पतत = वे दोनों गिरते हैं।	पतन्ति = वे सब गिरते हैं।

'वसत' इत्यादि जिन रूपों में 'त' लगा हो उन्हें प्रथम पुरुष के द्विवचन का रूप तथा 'वसन्ति' आदि जिनमें 'अन्ति' लगा हो उन्हें प्रथम पुरुष के बहुवचन का रूप समझना चाहिए।

'तः' यह वर्त्तमानकाल के प्रथम पुरुष के द्विवचन का प्रत्यय और 'अन्ति' यह वर्तमानकाल के प्रथमपुरुष के बहुवचन का प्रत्यय है।

'त' के साथ 'तौ' अथवा सज्ञाशब्द प्रयुक्त होता है तथा सज्ञाशब्द की प्रथमा विभक्ति का द्विचनान्त रूप प्रयुक्त होता है। जैसे —

तौ वसत'-वे दोनों रहते है। बालौ वसत = वे दोनों बालक रहते हैं।

प्रथम पुरुष के बहुवचनान्तीय 'अन्ति' के साथ बहुवचन सर्वनाम 'ते' अथवा सज्ञाशब्द का प्रथमा विभक्ति का बहुवचनान्त प्रयुक्त होता है। जैसे — ते वसन्ति = व सब रहते हैं। बाला वसन्ति – वे सब बालक रहते हैं।

चतुर्थगण (दिवादि) :—

नश्यति = वह नष्ट होता है।	नश्यन्ति = वे सब नष्ट होते है।
नृत्यति = यह नाचता है।	नृत्यन्ति = वे सब नाचते हैं।
कुप्यतः = वे दोनों क्रोध करते हैं।	कुप्यन्ति=वे सब गुस्सा करते हैं।
लुभ्यतः = वे दोनों लोभ करते हैं।	लुभ्यन्ति=वे सब लोभ करते हैं।
क्रुध्यतः = वे दोनों क्रोध करते हैं।	क्रुध्यन्ति=वे सब क्रोध करते हैं।
पुष्यत = वे दोनों पुष्ट होते हैं।	पुष्यन्ति = वे सब पुष्ट होते हैं।

धातुकोष

चतुर्थगण (दिवादि) :—

नश् = नष्ट होना।	नृत् = नाचना।
कुप् = क्रोध करना।	क्रुध् = क्रोध करना।
लुभ् = लोभ करना।	पुष् = पुष्ट होना।

अनुवाद करो :—

वे दोनों जाते हैं।	वे दोनों नाचते हैं।
वह रहता है।	वे सब रक्षा करते हैं।
वे सब नाचते हैं।	वे दोनों गिरते हैं।
वह गुस्सा करता है।	वे सब बनाते हैं।

तृतीय पाठ

वर्त्तमानकाल (मध्यमपुरुष) —

कुप्यसि = तू क्रुद्ध होता है।	रक्षथ = तुम सब रक्षा करते हो।
नश्यसि = तू नष्ट होता है।	भजथ = तुम सब बनाते हो।
नृत्यथः = तुम दोनों नाचते हो।	लिखथ = तुम सब लिखते हो।
नयथः = तुम दोनों ले जाते हो।	स्पृशथ = तुम सब छूते हो।
पतथः = तुम दोनों गिरते हो।	वदथ = तुम सब बोलते हो।

उपरिलिखित वाक्यों को देखने से अधोलिखित नियम निकलता है —

१ वर्त्तमानकाल के द्वितीयपुरुष (मध्यमपुरुष) के एकवचन का प्रत्यय 'सि', द्विवचन का 'थः' और बहुवचन का प्रत्यय 'थ' है। इस प्रकार मध्यम पुरुष के रूप एकवचन में 'गच्छसि' द्विवचन में 'गच्छथः' बहुवचन में 'गच्छथ' होते हैं।

२ क्रिया के मध्यम पुरुष के रूपों के साथ सर्वदा 'युष्मद्' शब्द के रूपों (त्वं, युवाम्, यूयम्) का ही प्रयोग होता है, किसी संज्ञाशब्द का नहीं। परन्तु युष्मद् शब्द के रूपों का प्रयोग न होने पर भी उनका अर्थ प्रकट हो जाता है। जैसे —

त्वं कुप्यसि = तू क्रुद्ध होता है, कुप्यसि = तू क्रुद्ध होता है, इत्यादि।

धातुकोषः

प्रथमगण (भ्वादि)

जि (जय्) = जीतना। करना।
दृश् = (पश्य्) देखना। [illegible]
त्यज् = छोड़ना।

धाव=दौड़ना।	पच्=पकाना।
जीव्=जीना।	स्मृ (स्मर्)=याद करना।
पा (पिब)=पीना	हृ (हर)=चुराना, छीनना।
दृह्=बढ़ाना	स्था (तिष्ठ्)=ठहरना।
चतुर्थगण (दिवादि):—	**षष्ठगण (तुदादि):—**
अस्=फेंकना।	क्षिप्=फेंकना।
कुस्=आलिङ्गन करना।	तुद्=दुःख देना।
तुष्=प्रसन्न होना, तृप्त होना।	सिच्=(सिञ्च्)=सींचना।
लुठ्=लुटना, लोटना।	ऋच्=स्तुति करना।
शुष्=सूखना।	तृप्=तृप्त होना।

अनुवाद करो —

वदथः।	दहति।	लुभ्यन्ति।	मुञ्चन्ति।
गच्छन्ति।	जीवत।	स्पृशथ।	विशन्ति।
नयथ।	नमन्ति।	मृजथ।	पतत।
भवसि।	पुष्यथ।	इच्छन्ति।	यजत।
वसन्ति।	नृत्यमि।	पृच्छथ।	तुष्यथ।

संस्कृत में अनुवाद करो —

तुम (सब) बोलते हो।	वे होते हैं।
बालक (सब) जानते हैं।	तुम (दोनों) खाते हो।
तू ले जाता है।	वे (दोनों) दुःख देते हैं।
तू पुष्ट होता है।	तू पीता है।
वे (सब) नाचते हैं।	वे पूजा करते हैं।
वह लोभ करता है।	वे ले जाते हैं।
तुम सब छूते हो।	तुम फेंकते हो।
तुम दोनों चुराते हो।	वे आलिंगन करते हैं।
वे फेंकते हैं।	तुम (दोनों) खुश होते हो।
वे (दोनों) सूखते हैं।	तू सींचता है।

अनुवाद करो :—

वे दोनों जाते हैं ।	वे दोनों नाचते हैं ।
वह रहता है ।	वे सब रक्षा करते हैं ।
ये सब नाचते हैं ।	वे दोनों गिरते हैं ।
वह गुस्सा करता है ।	वे सब बनाते हैं ।

तृतीय पाठ

वर्तमानकालः (मध्यमपुरुष) —

कुप्यसि = तू क्रुद्ध होता है ।	रक्षथ = तुम सब रक्षा करते हो ।
नश्यसि = तू नष्ट होता है ।	सजथ = तुम सब बनाते हो ।
नृत्यथः = तुम दोनों नाचते हो ।	लिखथ = तुम सब लिखते हो ।
नयथः = तुम दोनों ले जाते हो ।	स्पृशथ = तुम सब छूते हो ।
पतथः = तुम दोनों गिरते हो ।	वदथ = तुम सब बोलते हो ।

उपरिलिखित वाक्यों को देखने से अधोलिखित नियम निकलता है —

१ वर्तमानकाल के द्वितीयपुरुष (मध्यमपुरुष) के एकवचन का प्रत्यय 'सि', द्विवचन का 'थः' और बहुवचन का प्रत्यय 'थ' है । इस प्रकार मध्यम पुरुष के रूप एकवचन में 'गच्छसि' द्विवचन में 'गच्छथः' बहुवचन में 'गच्छथ' होते हैं ।

२ क्रिया के मध्यम पुरुष के रूपों के साथ सर्वदा 'युष्मद्' शब्द के रूपों (त्वम्, युवाम्, यूयम्) का ही प्रयोग होता है, किसी अन्य शब्द का नहीं । परन्तु युष्मद् शब्द के रूपों का प्रयोग न होने पर भी उनका अर्थ प्रकट हो जाता है । जैसे —

त्वं कुप्यसि = तू क्रुद्ध होता है, कुप्यसि = तू क्रुद्ध होता है, इत्यादि ।

धातुकोषः

प्रथमगण (भ्वादिः) :—

जि (जय्) = जीतना ।	यज् = होम, पूजा करना ।
दृश् = (पश्य्) देखना ।	नम् = झुकना, प्रणाम करना ।
त्यज् = छोड़ना ।	वह् = ढोना, ले जाना ।

धाव=दौड़ना।	पच्=पकाना।
जीव्=जीना।	स्मृ (स्मर्)=याद करना।
पा (पिब)=पीना	हृ (हर)=चुराना, छीनना।
दह्=जलाना।	स्था (तिष्ठ्)=ठहरना।
चतुर्थगण (दिवादिः)—	**षष्ठगण (तुदादिः)**—
अस्=फेंकना।	क्षिप्=फेंकना।
कुस्=आलिङ्गन करना।	तुद्=दुःख देना।
तुष्=प्रसन्न होना, तृप्त होना।	सिच्=(सिञ्च्)=सींचना।
लुठ्=लूटना, लोटना।	स्तुच्=स्तुति करना।
शुष्=सूखना।	तृप्=तृप्त होना।

अनुवाद करो—

वदथः।	दहति।	लुभ्यन्ति।	मुञ्चन्ति।
गच्छन्ति।	जीवत।	स्पृशथ।	विशन्ति।
नयथ।	नमन्ति।	सृजथ।	पतत।
भवसि।	पुष्यथ।	इच्छन्ति।	यजत।
वसन्ति।	नृत्यामि।	पृच्छथ।	तुष्यथ।

संस्कृत मे अनुवाद करो—

तुम (सब) बोलते हो।	वे होते हैं।
बालक (सब) जानते हैं।	तुम (दोनों) खाते हो।
तू ले जाता है।	वे (दोनों) दुःख देते हैं।
तू पुष्ट होता है।	तू पीता है।
वे (सब) नाचते हैं।	वे पूजा करते हैं।
वह लोभ करता है।	वे ले जाते हैं।
तुम सब छूते हो।	तुम फेंकते हो।
तुम दोनों चुराते हो।	वे आलिंगन करते हैं।
वे फेंकते हैं।	तुम (दोनों) खुश होते हो।
वे (दोनों) सूखते हैं।	तू सींचता है।

चतुर्थः पाठः

वर्त्तमानकाल (उत्तमपुरुष) :—

गच्छामि = मैं जाता हूँ।
इच्छामि = मैं चाहता हूँ
पृच्छाव = हम दोनों पूछते हैं।
पिबाव. = हम दोनों पीते हैं।
सृजाम = हम सब बनाते हैं
धावाम = हम सब दौड़ते हैं
शुष्याम = हम सब सूखते हैं
हरामः = हम सब चुराते हैं।

ऊपर लिखे वाक्यों पर ध्यान देने से नीचे लिखे नियम प्रतीत होते हैं -

१—उत्तम पुरुष के एकवचन का मि, द्विवचन का व और बहुवचन का प्रत्यय म. है।

२—मि, व. और मः प्रत्यय के पूर्व अकार को आ (दीर्घ) हो जाता है।

दशमगण (चुरादि) .—

क्षालयति = वह धोता है।
चोरयति = वह चुराता है।
रचयाव = हम दोनों बनाते हैं।
पीडयाम. = हम दुःख देते हैं।
कथयति = वह कहता है।
चिन्तयामि = मैं चिन्ता करता हूँ, सोचता हूँ।

क्षालयति = (क्षाल् + अय + ति)। चिन्तयामि=(चिन्त् + अय + मि)

उपरिलिखित रूपों से विदित होता है कि :—

१—दशमगण में धातु के आगे अय प्रत्यय जोड़ा जाता है।

२—दशमगण में साधारण रीति से प्रथम अकार को दीर्घ आकार हो जाता है परन्तु कथयति, गणयति आदि कुछ धातुओं में नहीं होता।

धातुकोष

प्रथमगण (भ्वादि) —
अत् = घूमना।
चल् = चलना, जाना।
जल्प् = बकवाद करना।
निन्द् = निन्दा करना, बुरा कहना।
शंस् = कहना।

चतुर्थगण. (दिवादि.) —
क्षुभ् = सन्तप्त (दुःखी) होना
श्लिष् = आलिङ्गन करना।
क्लम् (क्लम्य)थकना,श्रान्त होना
क्षम् (क्षाम्) क्षमा करना।
भ्रम् (भ्राम्) = घूमना।
शम् (शाम्) = शान्त होना।

षष्ठगणः (तुदादि) :—

उञ्छ् = कन बीनना । स्फुर् = चमकना ।
कृष् = जोतना, खींचना । धि = धारण करना ।

दशमगण (चुरादि) —

गण् = गिनना । चुर् = चुराना ।
घुष् (घोष्) बाहिर करना, घोषणा करना । प्रथ् = प्रसिद्ध करना ।
कथ् = कहना ।
चिन्त् = सोचना, विचारना । वर्ण् = वर्णन करना, स्तुति करना ।

अनुवाद करो —

चोरयाव ।	प्रीणयथः ।	जयथ ।
कथयत ।	गच्छत ।	नश्यतः ।
गणयाव ।	नयाव ।	नृत्याव ।
प्रथयाव ।	विशत ।	इच्छत ।
घोषयथः ।	नमथ ।	चिन्तयामः ।
चिन्तयत ।	स्मराव ।	हराव ।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

तुम (दोनों) चुराते हो । तुम गिनते हो ।
वे सब दुःख देते हैं । हम बनाते हैं ।
हम (दोनों) कहते हैं । वे (दोनों) इच्छा करते हैं ।
वे बाहिर करते हैं । हम (दोनों) जीवित होते हैं ।
मैं विचार करता हूँ, सोचता हूँ । वे वर्णन करते हैं ।
तुम (दोनों) प्रसिद्ध करते हो, फैलाते हो । हम आलिङ्गन करते हैं ।
वे निन्दा करते हैं । तुम (दोनों) बकवाद करते हो ।
हम खुश करते हैं । वह शान्त कराता है ।
वे खींचते हैं । वे (दोनों) प्रशंसा करते हैं ।
हम घृणा करते हैं । तुम घूमते हो । तुम बोलते हो । वे सींचते हैं ।
वे (दोनों) सन्तप्त होते हैं । हम (दोनों) जानते हैं ।
वे लोभ करते हैं । तुम (दोनों) प्रसन्न होते हो ।

पञ्चमः पाठः

वर्त्तमानकाल (परस्मैपदम्)

प्रथमगण (भ्वादि) —

क्षि (क्षय्) = नष्ट होना । रुह् (रोह्) = उगना, बढ़ना
द्रु (द्रव्) = भागना, पिघलना । ह्वे (ह्वय्) = बुलाना ।

चतुर्थगण (दिवादि) :—

मद् (माद्) = आनन्दित होना । श्रम् (श्राम्) = थकना ।

दशमगण (चुरादि) —

प्री (प्रीण्) = प्रसन्न करना । क्षल् (क्षाल्) = धोना ।
रच् = बनाना । तड् (ताड्) = पीटना, ठोकना
स्पृह् = चाहना । तुल् (तोल) = तोलना ।
पूज् = पूजा करना । भूष् = शोभित करना ।

अनुवाद करो :—

पुष्यसि ।	गच्छथ ।	वमत ।
नृत्यामि ।	श्राम्यसि ।	हराम ।
लुभ्यथ ।	इच्छामि ।	वदथ ।
विशति ।	पिबाव ।	विशामि ।
इच्छसि ।	क्षयन्ति ।	इच्छन्ति ।
पूजयामि ।	वदसि ।	चोरयति ।
तुदसि ।	तोलयति ।	तोलयामि ।
वदाम ।	चोरयन्ति ।	ताडयन्ति ।
तुष्यन्ति ।	रचयथ ।	पचाव ।
माद्यति ।	प्रथयति ।	पूजयथ ।
जयामि ।	स्मरामि ।	नृत्यन्ति ।

संस्कृत मे अनुवाद करो —

(तू) कहता है।
(तुम) रहते हो।
(हम) जानते हैं।
(वह) रक्षा करता है।
(मैं) गिरता हूँ।
(वे) ले जाते हैं।
(तू) नष्ट होता है।
(वह) नाचता है।
(हम) घुसते हैं।
(तुम) पूछते हो।
(वह) क्षुब्ध होता है।
(मैं) चाहता हूँ।
(तुम) छोड़ते हो।
(वह) छूता है।
(तुम) याद करते हो।
(वे दोनों) ले जाते हैं।
(वह) सींचता है।
(वे) लूटते हैं।
(मैं) प्रसन्न होता हूँ।
(तुम दोनों) फेंकते हो।
(मैं) कहता हूँ।
(तुम) प्रशंसा करते हो।
(तू) पीटता है।
(वे) उगते हैं।
(वह) पूजा करता है।
(मैं) ठहरता हूँ।
(तुम) चाहते हो।
(वह) दौड़ता है।
(वे दोनों) नष्ट होते हैं।
(हम) जिन्दा होते हैं, जीते हैं।
(तुम) दौड़ते हो।
(वे) पकाते हैं।
(मैं) पुष्ट होता हूँ।
(वे दोनों) चुराते हैं।
(तू) जीतता है।
(वे) पीते हैं।
(हम दोनों) देखते हैं।
(वह) बुलाता है।
(वे) दुःख देते हैं।
(हम) जाते हैं।
(मैं) थकता हूँ।
(तुम) घोषणा करते हो।
(वह) गिनता है।
(हम) खींचते हैं।
(वे) पिघलते हैं।

षष्ठः पाठः

(वर्तमानकालिक धातुरूपाणि)

गम् (गच्छ्) प्रथमगण (भ्वादिः) .—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुष	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
मध्यमपुरुष	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उत्तमपुरुषः	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

पुष् चतुर्थगण (दिवादि) --

प्रथमपुरुष	पुष्यति	पुष्यतः	पुष्यन्ति
मध्यमपुरुषः	पुष्यसि	पुष्यथः	पुष्यथ
उत्तमपुरुष.	पुष्यामि	पुष्यावः	पुष्यामः

चुर् (चोर) दशमगण. (चुरादि) --

प्रथमपुरुष	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
मध्यमपुरुषः	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उत्तमपुरुषः	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

इष् (इच्छ्) षष्ठगणः (तुदादिः) .--

प्रथमपुरुष	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
मध्यमपुरुषः	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उत्तमपुरुष	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

शुद्ध करो --

अहं पूजयसि । ते इच्छाथ ।
वयं भिक्षामि । वयं शिक्षावः ।
त्वं रक्षति । यूयं द्रवाम ।
यूयं पतामः । तौ गच्छथ ।
ते नयथ. । सः नश्यसि ।

सप्तमः पाठ.

उपसर्गाः —

गच्छति = जाता है	पतामि = गिरता हूँ।
आगच्छति = आता है।	उत्पतामि = ऊपर उठता हूँ, कूदता हूँ।
उपगच्छति = पास जाता है।	वदाम = बोलते हैं।
नयति = ले जाता है।	प्रतिवदाम = उत्तर देते हैं।
आनयति = लाता है।	सर्पति = सरकता है।

अपनयति=दूर करता है, हटाता है। अनुसरति = पीछे पीछे आता है।

ऊपरि लिखित 'गच्छति' आगच्छति' आदि क्रियाओं में क्रियापद की समानता होने पर भी क्रिया के पूर्व आ, उप आदि अन्य पद जोड़ देने से उनके अर्थ में भेद हो जाता है। ऐसे पदों को 'उपसर्ग' कहते हैं। इनका सम्बन्ध क्रिया के साथ ही होता है।

कुछ मुख्य 'उपसर्ग' अर्थ सहित नीचे दिये जाते हैं —

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरणम्
अति	अतिशय तथा उत्कर्ष	अतिशेते = उत्कृष्ट होता है।
अधि	प्रधानता, समीपता, तथा उपरिभाव आदि	अधिगच्छति = पाता है।
अभि	पास, सामने	अभिगच्छति=पास वा सामने जाता है।
अव	नीचे	अवतरति = नीचे उतरता है।
उप	पास	उपगच्छति = पास जाता है।
आ	सीमा, ग्रहण तथा विरोध आदि	आगच्छति = आता है।
प्रति	प्रत्येक, बराबरी, विरोध, परिवर्तन	प्रतिभाषते = उत्तर देता है।
वि	अभाव, पृथक्	विश्लिष्यति = पृथक् होता है।
सम्	मिलना	सङ्गच्छते = मिलता है।

अष्टमः पाठ

प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति :—

बालः क्रीडति = बालक खेलता है।
वृक्षौ पततः = (दो) वृक्ष गिरते हैं।
अश्वः चरति = घोड़ा चलता है या चरता है।
बुधाः पठन्ति = विद्वान पढ़ते हैं।
देवाः जयन्ति = देवता जीतते हैं।
चोरौ चोरयतः = (दो) चोर चुराते हैं।
पर्णं शुष्यति = पत्ता सूखता है।
पुष्पाणि पश्यन्ति = (वे) फूल को देखते हैं।
पापानि नश्यन्ति = पाप नष्ट होते हैं।
दुःखानि गलन्ति = दुःख दूर होते हैं।
कन्या पठति = लड़की पढ़ती है।
प्रमदे गच्छतः = (दो) स्त्रियाँ जाती हैं।
बालिकाः धावन्ति = लड़कियाँ दौड़ती हैं।
धर्ममुपदिशामि = (मैं) धर्म का उपदेश करता हूँ।
असत्यं वदथ = (तुम) झूठ बोलते हो।
बालौ ताडयति = (वह) दो बालकों को पीटता है।
वेदान् पठामः = (हम) वेदों को पढ़ते हैं।
पुस्तकानि लिखन्ति = (वे) पुस्तक लिखते हैं।
वानराः वृक्षमारोहन्ति = बन्दर वृक्षों पर चढ़ते हैं।
वयं बालकं पश्यामः = हम बालक को देखते हैं।

उपर्युक्त वाक्यों को ध्यान से देखिये। इनसे नीचे के नियम प्रतीत होते हैं

१–(अ) 'खेलने' आदि क्रियाओं को 'बालक' आदि करते हैं। ये क्रिया के कर[illegible] वाले हैं। अतः ये कर्ता हैं (क्रियासम्पादक कर्ता) और उन[illegible] प्रथमा विभक्ति है। इसलिए कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। [illegible] कर्ता कारक कहते हैं।

(आ) 'बालः क्रीडति' इस वाक्य में क्रिया 'क्रीडति' तथा कर्ता 'बाल[illegible] दोनों एकवचन हैं। 'वृक्षौ पततः' इस वाक्य में क्रिया 'पततः' त[illegible]

कर्ता 'वृक्षौ' दोनों द्विवचन हैं। 'बुधाः पठन्ति' इस वाक्य में क्रिया 'पठन्ति' तथा कर्ता 'बुधाः' दोनों बहुवचन हैं। अतः क्रिया तथा कर्त्ता में समान वचन होता है।

(ङ) 'बालः क्रीडति, कन्या क्रीडति, मित्रं क्रीडति, इन तीनों वाक्यों में कर्त्ता बालः, कन्या और मित्र क्रम से पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग हैं, परन्तु क्रिया 'क्रीडति' में कोई अन्तर नहीं है। अतः लिङ्गभेद का क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अर्थात् कर्त्ता कारक किसी भी लिङ्ग का हो किन्तु क्रिया के रूप में परिवर्तन नहीं होगा।

२—'पुस्तकानि लिखन्ति' = वे पुस्तक लिखते हैं'। इस वाक्य में 'पुस्तक' शब्द पढ़े बिना 'लिखते हैं' का अर्थ पूरा प्रतीत नहीं होता और *'क्या लिखते हैं?'* यह जिज्ञासा बनी ही रहती है। इसलिए क्रिया के अर्थ को पूरा करने वाले शब्द को कर्म कहते हैं। 'पुस्तक' कर्म है। कर्मवाचक शब्द में द्वितीया विभक्ति की जाती है।

३—संस्कृत में वाक्यान्तर्गत शब्दों के आगे-पीछे लिखने के विषय में कोई नियम नहीं है। जिस प्रकार हिन्दी में पहले 'कर्त्ता' पीछे 'कर्म' और उसके बाद 'क्रिया' का प्रयोग होता है, संस्कृत में ऐसा नियम नहीं है। इच्छानुसार किसी भी क्रम से शब्द-विन्यास किया जा सकता है। जैसे —

योधः शरौ क्षिपति, शरौ क्षिपति योधः=योद्धा (दो) बाण फेंकता है।

शब्दकोषः

अकरान्तपुंल्लिङ्गशब्दाः —

अगदः = औषध, दवाई।	पादः = पैर।
ओदनः = भात।	प्राज्ञः = बुद्धिमान् मनुष्य।
किङ्करः = नौकर, भृत्य।	बिडालः = बिलाव।
कोशः = खजाना।	भारः = बोझ।
गजः = हाथी।	मोक्षः = मुक्ति, छुटकारा।
जनकः = पिता।	व्याधः = शिकारी।
देहः = शरीर, अङ्ग।	सूर्यः = सूर्य।
अश्वः = घोड़ा।	स्तेनः = चोर।
चौरः = चोर।	अनलः = अग्नि।

जन = मनुष्य ।	कूर्म = कछुवा ।
बुधः = विद्वान्, समझदार आदमी ।	नृप = राजा ।
योधः = सिपाही ।	पवनः = वायु ।
वत्सः = प्रिय बालक ।	मेघ = मेघ, बादल ।
धीरः = वीर, हिम्मती ।	सूद = रसोइया ।
शरः = बाण ।	हस्त = हाथ ।
कण्ठः = गला ।	व्याघ्रः = बाघ ।

अकारान्तनपुंसकलिङ्गशब्दाः —

अरण्यम् = जंगल, वन ।	पापम् = पाप, बुरा काम ।
तृणम् = घास ।	मांसम् = मांस ।
वस्त्रम् = कपड़ा ।	विषम् = विष ।
सुवर्णम् = सोना ।	ज्ञानम् = ज्ञान ।
अनृतम् = मिथ्या, झूठ ।	कमलम् = कमल ।
असत्यम् = ,, ,, ।	गृहम् = घर ।
नयनम् = नेत्र, आँख ।	हृदयम् = हृदय ।
पर्णम् = पत्ता ।	फलम् = फल ।
पुस्तकम् = पुस्तक ।	मित्रम् = मित्र ।
वनम् = वन, जंगल ।	धान्यम् = अनाज ।

इकारान्तपुँल्लिङ्गशब्दाः —

अरिः = शत्रु, दुश्मन ।	पाणि = हाथ ।
असिः = तलवार ।	यतिः = सन्यासी ।
उदधि = समुद्र ।	व्याधि = रोग ।
कपि = वानर, बन्दर ।	अतिथिः = पाहुना, अभ्यागत ।
गिरिः = पर्वत ।	अधिपति = स्वामी, मालिक ।
नृपति = राजा ।	अलि = भौंरा ।
पथिः = रास्ता ।	कलि = कलह, लड़ाई झगड़ा ।
मणि = रत्न ।	विधि = दैव, भाग्य ।
रविः = सूर्य ।	राशि = ढेर ।
व्रीहिः = अनाज ।	सारथिः = सारथि, रथ हाँकनेवाला

धातु:—

दण्ड् (१०) = सजा देना।
भक्ष् (१०) = खाना।
मार्ग (१०) = तलाश करना।
प्र+क्षाल (१०) = धोना।
दा (यच्छ्) (१) = देना।
अभि+नन्द् (१)=प्रशंसा करना।
आ+नी (१) = लाना।

अव्ययम्:—

सुष्ठु= ठीक, अच्छी तरह।
बाढम्=स्वीकार।

हिन्दी में अनुवाद करो:—

दुःखं नश्यति।
अनृतं वदसि।
स्तेनाश्चोरयन्ति।
ताडयन्ति चोरान्।
पर्णानि पतन्ति।
शरमस्यति वीर.।
पर्णानि गणयत।
देवं पूजयामि।
पुस्तकं रचयसि।
धर्ममुपदिशन्ति।
जना आगच्छन्ति।
फले पतत.।
वनं गच्छामः।
अश्वावुत्पतत.।
नाल' स्पृहयति।
सूदो विशति।
समुद्रः शाम्यति।
कमले विकसत.।
कवयः नृपान् वर्णयन्ति।
रामः कवीन् नमति।
यतयः पर्वतं गच्छन्ति।
मूर्खौ कुप्यतः।
कूर्मः सरति।
हस्तौ जलं क्षिपत.।
जनो रामं पूजयति।
बालो गृहं गच्छति।
सुखं प्रीणयति।
नृप. शठान् दण्डयति।
रामोऽश्वमारोहति।
हरिर्हस्तौ क्षालयति।
योधः शरान् क्षिपति।
स्तेनो धान्यं चोरयति।
स्मरसि मित्राणि।
बुधो ज्ञानमिच्छति।
पुत्रो जनकं सान्त्वयति।
सुवर्णं तोलयाम.।
फले भक्षयामि।
कमलानि पश्यति।
प्राज्ञान् वर्णयन्ति जना।
रत्नानि इच्छामि।
समुद्रमटति (भ्रमति)।
जनो वह्निं विशति।

वानरान् ताडयाव'।	सारथी चिन्तयतः।
अगदा व्याधीन् हरन्ति।	लोको नृपतीन् प्रीणयति।
व्याध करिण पश्यति।	नृपा यतीन् नमन्ति।
हरिररीन् ताडयति	अश्वौ जल पिबतः।
योधोऽसिं क्षिपति।	जनो बलिं यच्छति।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

कौवा बलि खाता है।	शिष्य यतियों से पूछते हैं।
राजा शत्रुओं को जीतता है।	बीमारी की परवाह नहीं करता।
बीमारी हरि को दुख देती है।	नौकर मालिकों का अनुकरण करते हैं।
राम जल सींचता है।	हम (दोनों) समुद्र पर जाते हैं।
कमल भौंरों को प्रसन्न करता है।	हम ऋषियों को नमस्कार करते हैं।
राम सूर्य को प्रणाम करता है।	हम सारथियों को सुनते हैं।
सिपाही तलवार धारण करते हैं।	वे (दोनों) देर से जाते हैं।
कवि स यात्रियों का वर्णन करते हैं।	भिखारी अनाज चुराता है।
चोर रत्न चुराता है।	वे पर्वतों पर चढ़ते हैं।
बालक प्रसन्न होता है।	राम बादलों को देखता है।
ईश्वर बनाता है।	विद्वान् स्वर्ग जाता है (चढ़ता है)।
(दो) समुद्र क्षुभित होते हैं।	सिपाही (दो) बाण छोड़ता है।
विद्वान् शान्त होता है।	ईश्वर मनुष्यों की रक्षा करता है।
मूर्ख बकवाद करता है।	पुत्र पिता को प्रसन्न करता है।
मित्र सोचता है।	मनुष्य कछुवे को खाता है।
पत्ते गिरते हैं।	वे अपने पैर धोते हैं।
(दो) कछुवे रेंगते हैं।	(दो) मूर्ख विष पीते हैं।
प्राणी नष्ट होते हैं।	राजा चोरों को दण्ड देता है।
कमल सुशोभित करते हैं।	राम को उसके मित्र याद करते हैं।

शुद्ध करो :—

१—बालक' गच्छति। २—बालिक। हन्ति। ३—नराः पठति।
४—रामेण पश्यति। ५—स पर्वत. आरोहति। ६—हरिमरीन् ताडयति।
७—रामः कर्पां नमन्ति। ८—लोको यति विद्वान।

नवमः पाठः

तृतीया, चतुर्थी तथा पञ्चमी विभक्ति :—

रथेन आगच्छति = रथ से आता है।

पादाभ्यां चलति = पैरों से चलता है।

बालैः सह क्रीडामि = मैं बालकों के साथ खेलता हूँ।

रामाय पुस्तकं यच्छति = राम को पुस्तक देता है।

फलेभ्यो गच्छामि = फलों के लिए जाता हूँ।

पल्वलेभ्यो वराहा उत्तिष्ठन्ति = पोखरों से सूअर उठते हैं (निकलते हैं)।

'रथ से आता है' इस वाक्य में आने की क्रिया में रथ सहायक है, क्योंकि आना रथ के द्वारा होता है, अतः वह करण है।

'पैरों से चलता है' इस वाक्य में चलने की क्रिया में पैर सहायक है, अतः वे करण हैं।

'राम को पुस्तक देता है' इस वाक्य में राम को पुस्तक दी जाती है, अतः वह सम्प्रदान कहाता है।

'पोखरों से सूअर उठते हैं' इस वाक्य में सूअर पोखरों से पृथक् होते हैं, अतः वे अपादान कहाते हैं। इसलिए —

१—जो प्रातिपदिक (शब्द) क्रिया के व्यापार में कर्ता का सहायक हो और जिसके व्यापार के अनन्तर ही क्रिया का फल उत्पन्न हो अर्थात् जो कर्ता के क्रिया करने में साधन हो उसे करण कहते हैं। करण में प्रायः तृतीया विभक्ति लगाई जाती है।

करण तीन प्रकार के होते हैं —

प्रथम वह, जो क्रिया के व्यापार में कर्त्ता का आप ही सहायक हो। जैसे—असिना ताडयति = तलवार से मारता है। यहाँ 'मारना' क्रिया में तलवार सहायक है।

द्वितीय वह, जो स्वयं कर्त्ता का सहायक न हो परन्तु जिससे ऐसा कार्य होता हो जो क्रियाफल की सिद्धि में उपयोगी हो। इसको हेतु भी कहते हैं। जैसे—दण्डेन घटं रचयति = दण्ड से घड़ा बनाता है। यहाँ घड़ा बनाने में दण्ड से स्वयं कोई सहायता नहीं होती, परन्तु चक्र भ्रमण आदि ऐसा कार्य किया जाता है जो घड़े के बनाने में उपयोगी होता है।

तृतीय वह, जो क्रिया के व्यापार का फल हो । जैसे :—अध्ययनेन वसति= पढ़ने के लिए रहता है । यहाँ अध्ययन 'निवास' क्रिया का फल है ।

२—(क) जिस को कोई वस्तु दी जावे उसे सम्प्रदान कहते हैं । सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

(ख) जिस आकांक्षा से कोई कार्य किया जावे अर्थात् जो क्रिया की प्रवृत्ति का फल हो, उसे भी सम्प्रदान कहते हैं । जैसे :—मुक्तये हरिं भजति= मुक्ति के लिए हरि का भजन करता है ।

३—परस्पर वियुक्त होने वाले पदार्थों में जो स्थिर हो अर्थात् जिसमें वियोग करने वाली क्रिया न हो, उसे अपादान कहते हैं। अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है । जैसे :—वृक्षात् पर्णं पतति=वृक्ष से पत्ता गिरता है । यहाँ पत्ता वृक्ष से अलग होता है, परन्तु गिरने की क्रिया पत्ते में ही होती है, वृक्ष से नहीं, अतः वृक्ष क्रियारहित होने से अपादान है ।

शब्दकोषः

पुंल्लिङ्गम् :—

आकाशः (शम्)= आकाश । निष्कः = मोहर ।
दुर्गः (र्गम्) = किला । पापः = पापी मनुष्य ।
पादः = पैर । प्रासादः = महल ।
पुरुषोत्तमः = विष्णु । माषः = उड़द ।
संमोहः = अज्ञान । याचकः = भिखारी ।
व्याघ्रः = बाघ । वधः = हत्या, मारना ।
अलङ्कारः = भूषण । सार्थः = काफला, यात्रीसमूह ।
आतपः = धूप । वराहः = सूअर ।
उपहारः = भेंट । पत्तिः = पैदल सिपाही ।
करः = हाथ । बाणः = तीर ।
कासारः = सरोवर, झील । कृषीवलः = किसान ।
नदः = बड़ी नदी । कोशः = कोष ।
नाविकः = मल्लाह ।

नपुंसकलिङ्गम् :—

अर्घ्यम् = पूजा का सामान । नगरम् (री)=नगर ।

इन्धनम् = ईंधन। (जलाने की लकड़ी)	शीर्षम् = सिर।
खनित्रम् = फावड़ा, खन्ता, कुदाल।	कुसुमम् = फूल।
चक्रम् = पहिया।	जाड्यम्=मन्दपना, मूर्खता।
पदम्=पैर।	शतम् = सौ।
पल्वलम् = पोखर, तलैय्या।	सिंहासनम्=सिंहासन।
मौनम् = चुप्पी, चुप रहना।	स्वकृत्यम् = अपना कार्य।
योजनम् = चार कोस।	भद्रम् = कल्याण।

धातुकोषः

दह् (प्रथम गण) = जलाना।	अधि+गम् (प्र० गण) = पाना।
खन ("") = खोदना।	प्रति+आ+गम् = लौटना।
अव+गम् ("") = जानना।	प्रति+दा (प्र० गण) (यच्छ्)= बदले में देना।
अव+नम् ("") = झुकना।	
वि+राज ("")=शोभित होना।	भज् (प्र० गण) – भजना, पूजना।
प्र+हृ ("")=प्रहार करना।	उद्+भू ("")=ऊपर होना।
दृ (दशमगण) = फाड़ना, चीरना।	उद्+स्था ("") (तिष्ठ्)= उठना।
धृ (,)=धारण करना, कर्ज लेना।	उप+दिश् (षष्ठगण)=उपदेश करना

विशेषणम् :—

खञ्ज = लगड़ा प्रभूत = बहुत। मूक = गूँगा।

विशेषण पद में विशेष्य के अनुसार ही लिङ्ग, वचन और विभक्तियाँ होती हैं।

अव्ययम् :—

सह, साकम् } = साथ।	नमः=नमस्कार।
	स्वस्ति=कल्याण।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

खनित्रेण खनति।	हरये नृपतिः कुप्यति।
बुधाः सुखेन जीवन्ति।	निष्कान् धारयति रामाय हरिः।
नेत्राभ्यां पश्यति जनः।	विनयः सुखाय भवति।
अग्निना गृहं दहति।	शिखरात्पतन्ति गजाः।
पादाभ्यां धावन्ति बालाः।	आसनेभ्य उत्तिष्ठन्त्याचार्याः।
लोभेन बुद्धिश्चलति।	प्रासादाज्जनं पश्यति नृपः।

धनपतिः = कुबेर । निधिः = खजाना ।
पराक्रमः = शूरता, बहादुरी । प्रसादः = कृपा ।
वर्णः = रंग, जाति । वासः = निवासस्थान ।
वृषः = बैल । श्वापदः = हिंसक जन्तु ।
उदयः = उगना, निकलना । जन्तु = प्राणी ।
खड्गः = तलवार । अम्बुधि = समुद्र ।
ईशः = परमेश्वर । तरु = वृक्ष ।
भानुः = सूर्य । मातलि = इन्द्र का सारथी ।
शिशु = बच्चा, बालक । साधु = सज्जन, अच्छा मनुष्य ।

नपुंसकलिङ्गम् :—

औषधम् = दवाई । कारणम् = कारण, हेतु ।
चरितम् = आचरण । युद्धम् = युद्ध ।
यूथम् = समूह । लाङ्गूलम् = पूँछ ।
वैरम् = शत्रुता । सौन्दर्यम् = सुन्दरता ।
हर्म्यम् = महल । अपत्यम् = सन्तान ।
धैर्यम् = धीरज ।

विशेषणम् :—

आह्लादकः = आनन्दकारक । दीर्घ = लम्बा ।
गर्ह्य = निन्दनीय । प्रथम = पहला ।
चण्ड = तेज, अत्यन्त क्रोधी, भयानक । प्रशस्य = प्रशंसनीय ।
श्रेष्ठ = उत्तम । बहु = बहुत ।
धनिक = धनवान् । पालक = रक्षा करनेवाला
धीर = गम्भीर । वीर = बहादुर ।

धातुकोष

क्षम् (क्षाम्) (चतुर्थगण) = क्षमा करना । अति + क्रम् (क्राम्, क्राम्) (प्रथमगण) = उल्लङ्घन करना, आगे बढ़ना ।
प्र + रुह् (प्रथम०) = उगना, जमना । उप + विश् (षष्ठगण) = बैठना ।

अव्ययम् :—

अपि = भी । अत्र = यहाँ । न = नहीं । कुत्र = कहाँ ।

क्व = कहाँ । तत्र = वहाँ । यत्र = जहाँ । सदा = हमेशा ।
कदा = कब । यदा = जब । तदा = तब । पुन = फिर ।
अधुना = अब । कथम् = कैसे । अद्य = आज । ह्यः = (बीता हुआ) कल ।
श्वः = (आगामी) कल । शीघ्रम् = जल्दी । च = और ।

हिन्दी मे अनुवाद करो :—

समुद्रस्य जल लवणम् । वारीणां निधिरम्बुधिः ।
देवस्य प्रसादेन जीवामि । आसनेपूपविशन्ति ।
शास्त्राणां तत्त्व प्रज्ञो बोधति । वनेषु श्वापदा सन्ति ।
गिरेः शिखरात् गजः पतति । आचार्या शिष्यधर्मं कथयन्ति ।
कासारे कमलान्युद्भवन्ति । मनुष्याणामगदेन व्याधयो नश्यन्ति ।
मृगाणां यूथ चरति । रामस्य सारथि सुमन्त्रो रथ वन नयति ।
ग्रीष्मे सूर्यस्य प्रकाशश्चण्डो भवति । चन्द्रस्य प्रकाशो जनानामाह्लादको भवति ।
वर्णानां ब्राह्मणः श्रेष्ठ । अरीणां सैनिकान नृपतिर्जयति ।
शठानां चरित गर्ह्यम् । योधस्य पाणौ खड्गोऽस्ति ।
कवयो लोकेषु वीराणां पराक्रमान् प्रथयन्ति । महादेवे यतीनां चित्तमस्ति ।
हरे' पुस्तक क्वास्ति ? शिशू भाग्य निन्दत' ।
मेघेभ्यो जलस्य बिन्दव' पतन्ति । व्याधिना समो रिपुर्न ।
कपी वृक्षेभ्यः फलानि क्षिपत । साधोर्वचनमतिक्राम्यति मूर्खः ।
अलय' कुसुमानां गन्ध हरन्ति । यदा यदा धर्मस्याभावो भवति, तदा तदा केनाप्युपायेनाधर्मो नश्यति ।
मूर्खा सदा वृथा जल्पन्ति ।
वीरयोर्युद्धं भवति ।

संस्कृत मे अनुवाद करो .—

हरि के दोनों पुत्रों का आचरण प्रशसनीय है । राजा महलों में रहते हैं ।
धनवान् लोग महलों (हर्म्य) में रहते हे ।
बन्दरों की पूँछें लम्बी होती हैं । झीलों का पानी खारा होता है ।
कवियों म कालिदास पहला है । पर्वतों के शिखरों पर बर्फ है ।
चोर ब्राह्मण का धन चुराता है । बादल आकाश में चरते हैं (स्तृ०) ।

मैं बगीचों की सुंदरता से प्रसन्न हूँ। हे हरि ! विनय से लोग प्रसन्न होते हैं।
मैं अग्नि में घी डालता हूँ। समुद्र में बहुत रत्न हैं।
मूर्ख की दवा नहीं है। फूल बगीचे में वृक्षों को भूषित करते हैं।
कमल जल में उगते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य अपने मन में क्रोध को
ईश्वर पापियों के पापों को क्षमा करता है। स्थान नहीं देता।

शुद्ध करो —

बालक वसति। यत्नस्य विना किमपि न भवति।
नरान् गच्छति। पुत्रः जनकस्य सह गच्छति।
यस्यापि सार्धं कलिर्न करोति हे नृपः ! मां रक्ष।
राम'। गुरोर्नमः।
स पुष्पाणां स्पृहयति। स रामस्य शत धारयति।
पापस्य दु समुत्पद्यते। स राम बिभेति।
मानवैर्ब्राह्मण. श्रेष्ठ। गुरु निन्दया शिष्य क्रुद्धो भवति
दरिद्रस्य धन यच्छति। नदी नगरात् त्रिभि. क्रोशैर्विद्यते।

विद्यार्थियों को विभक्तिज्ञान के लिए अधोलिखित श्लोकों को कण्ठस्थ कर लेना चाहिए :—

१ भवेद्विभक्तिः प्रथमा कर्तृवाच्यस्य कर्तरि।
सम्बुद्धौ नाममात्रे च कर्मवाच्यस्य कर्मणि।
क्वचिदव्ययोगे च प्रथमा कथ्यते बुधैः॥

२ कर्तृवाच्यप्रयोगे तु द्वितीया कर्मकारके।
धिक्प्रतीत्यादिभिर्योगे क्रियायाश्च विशेषणे।
ऋतेविनादिभिश्चैव द्वितीया संमता सताम्।

३ तृतीया करणे चैव कर्मवाच्यस्य कर्तरि।
सहार्थैश्च तथा हेतौ प्रकृत्यादिभ्य एव च॥
ऊनार्थैश्चापरार्थैश्च सदृशार्थैस्तथैव च।
अङ्गिनो विकृतिर्येन तृतीया स्यात् तद्गता।

४ सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात् तादर्थ्ये च क्रियायुते।
रुच्यर्थानां प्रीयमाणे नमोयोगे च सा भवेत्॥

५ अपादाने ल्यबर्थे च योगे पूर्वादिभिस्तथा।

उत्कर्षे पञ्चमी ज्ञेया हेत्वर्थे तु विभाषया।
ऋतेविनादिभिर्योगे पञ्चमी च स्मृता बुधैः ॥
६ षष्ठी भवति सम्बन्धे कृदन्ते कर्तृकर्मणोः।
तृतीया स्यात् तथा षष्ठी कृत्यानां कर्तृकारके।
तुल्यार्थयोगे षष्ठी स्यात् तृतीया च विभाषया॥
७ आधारे च तथा भावे विभक्तिः सप्तमी भवेत्।
अनादरे च निर्द्धारे षष्ठी स्यात् सप्तमी तथा॥



एकादशः पाठः

वर्तमानकाल (आत्मनेपदप्रत्यया) :—

आकाशे उड्डीयन्ते शुकाः = आकाश में पक्षी उड़ते हैं।
वत्से ! सुष्ठु शोभसे विनयेन=प्रिय बाले ! तू विनय से अच्छी तरह शोभित होती है।
असत्यं भाषध्वे = तुम लोग झूठ बोलते हो।

पहले पाठों में वर्तमानकाल के रूप दिये गये हैं। ऊपर दिये गये रूप— उड्डीयन्ते, शोभसे, भाषध्वे—में उनसे कुछ भेद दिखाई पड़ता है। धातु से लगने में ये कालसूचक प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं। कुछ परस्मैपद और कुछ आत्मनेपद के प्रत्यय हैं। जिन धातुओं से परस्मैपद के प्रत्यय आते हैं वे परस्मैपदी और जिनसे आत्मनेपद के प्रत्यय आते हैं वे आत्मनेपदी धातु कहलाती हैं। कुछ धातु ऐसी भी हैं जिनसे दोनों प्रकार के प्रत्यय आते हैं वे उभयपदी कहलाती हैं। आत्मनेपद (वर्तमानकाल) के रूप नीचे दिये जाते हैं —

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुष	शोभते	शोभेते	शोभन्ते
मध्यमपुरुष	शोभसे	शोभेथे	शोभध्वे
उत्तमपुरुष	शोभे	शोभावहे	शोभामहे

शब्दकोषः

जगत् (न०) = संसार। अर्चनम् (न०) = पूजा।
दृषद् (स्त्री०) = पत्थर। असंख्येय (वि०) = अगणित बहुत।
बलभिद् (पु०) = इन्द्र।

मित्रम् (न०) = मित्र।
विद्युत् (स्त्री०) = बिजली।
विधिः (पु) = ब्रह्मा।
विपश्चित् (पु०) = विद्वान्।
वियत् (न०) = आकाश।
सम्पद् (स्त्री०) = सम्पत्ति।
प्राय. (अव्यय) = बहुधा, अक्सर।
अपराध (पु०) = अपराध, कसूर।
अध्ययनम् (न०) = पढ़ना, अभ्यास।
उद्गमः (पुं०) = उत्पत्ति, निकास
फलः (पु०) – चटाई।
पारितोषिकम् (न०) = इनाम।
प्रबल (वि०) = बलवान्, शक्तिमान्
निम्नः (-म्नम्) (पुं० न०) = मगर
मणिकारः (पु०) = जौहरी।
शासनम् (न०) = आज्ञा।
स्वास्थ्यम् (न०) = तन्दुरुस्ती।

धातुकोष.

(प्रथमगण आत्मनेपदी) :—

ईक्ष् = देखना,
अप + ईक्ष = इच्छा करना।
प्र + ईक्ष = देखना।
परि + ईक्ष् = परीक्षा करना, सोचना।
रम् = खेलना, रमना।
रुच् (रोच्) = पसन्द आना।
वन्द् = नमस्कार करना।
लभ् = पाना
सह् = सहना।
जन (जा) (४ गण) = उत्पन्न होना।
अव + धीर् (१० गण) = तिरस्कार करना।
नि सूद् (१० गण –) = मारना।
याच् (१ गण) = माँगना।
कम्प् = काँपना, हिलना।
प्रकाश् = चमकना।
भाष् = बोलना।
मुद् (मोद्) = आनन्दित होना
वि + जि = जीतना।
शुभ् (शोभ्) = शोभित होना।
वेप = काँपना, हिलना।
शिक्ष् = सीखना।
सेव् = सेवा करना।
मृ (म्रिय्) (४ गण –) = मरना
मृग् (१० गण –) = खोजना।
विन्द् (१ गण) = पाना।
स्मि (स्मय्) (१ गण) = मुस्कराना
वि + स्मि (१ गण) – चकित होना

हिन्दी में अनुवाद करो :—

देवं वन्दे
भयाद्वेपते हृदयम्।
नयने प्रेक्षेते।
धनिकं द्रव्यं याचेते भिक्षुकौ।
सुधा मोदं विन्दन्ते।
मित्राणामभ्युदये नरा मोदन्ते।

गुरून् सेवामहे ।
असत्यं किं भाषध्वे ?
बालाय क्षीरं रोचते ।
दानेन पाणिः शोभते ।
मणीन् परीक्षते मणिकारः ।
सद्योगाद्धनं लभध्वे ।
मोक्षाय यतन्ते बुधाः ।
वातेन वृक्षाः कम्पन्ते ।

वृक्षेषु कुसुमानि वर्तन्ते ।
पापा न वचनीयमीक्षन्ते ।
सत्यं हितकरं च वाक्यं भाषन्ते प्रज्ञाः ।
शासनस्य भङ्गं न क्षमन्ते नृपतयः ।
गायकात्सङ्गीतं शिक्षावहे ।
मूर्खाणां वैयात्यं न सहामहे ।
प्रबलेनापि वातेन पर्वतो न कम्पते ।

देवान् भोगान् भिक्षन्ते नराः । नारायणे रामस्य स्नेहो वर्धते ।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

न्याय का अभ्यास शुरू करता हूँ ।
दुःख सहता है ।
योधा शत्रुओं से युद्ध करता है ।
तू पारितोषिक की इच्छा करता है (अपेक्ष्)
मनुष्य प्रायः धन के लिए यत्न करता है ।
राम अपने असंख्य गुणों से चमकता है ।
भक्त को ईश्वर की पूजा अच्छी लगती है ।
मैं आचार्य से अपना कर्तव्य सीखता हूँ ।
मैं शत्रुओं को बाणों से मारता हूँ ।
हम वसन्त में फल पाते हैं ।
पर्वत हिलते हैं ।
तारे चमकते हैं ।
नारायण के (दो) मित्र (उसके) कल्याण के लिए यत्न करते हैं ।
हम (दोनों) राजा की सेवा करते हैं ।
मूर्ख के अङ्ग बढ़ते हैं, ज्ञान नहीं ।

व्याघ्र घास और वृक्षों के पत्ते नहीं खाते ।
दुःख और सुख संसार से उत्पन्न होते हैं ।
तुम (दोनों) बिना कारण लड़ते हो ।
(दो) लड़के बगीचे में खेलते हैं ।
हम (दोनों) हरि से भलाई की आशा करते हैं ।
भिखारी चावल माँगते हैं ।
हम राजभवन के शिखर पर एक मोर देखते हैं ।
बुद्धिमान् ऐश्वर्य में प्रसन्न नहीं होते ।
जीवन बिजली के समान चञ्चल है ।
सज्जन विपत्ति में दुःखी नहीं होते ।
राजा विद्वानों की पूजा करता है ।
दुष्यन्त इन्द्र का मित्र है ।
जङ्गल में पत्थरों पर बैठते हैं ।

—:o:—

द्वादशः पाठः

भाववाच्य तथा कर्मवाच्यम् :—

देवदत्तः पुस्तकं लिखति=देवदत्त पुस्तक लिखता है।

देवदत्तेन पुस्तकं लिख्यते=देवदत्त से पुस्तक लिखी जाती है।

भद्रे! गच्छाम्यधुनाऽहम्=हे कल्याणिनी! अब मैं जाता हूँ।

भद्रे! गम्यतेऽधुना मया=हे कल्याणिनि! अब मुझसे जाया जाता है

वत्स! इहागच्छासन उपविश=पुत्र! यहाँ आओ, आसन पर बैठो

वत्स! इहागम्यताम्, आसन उपविश्यताम् त्वया=पुत्र! तुमसे आया जाय, आसन पर बैठा जाय।

नृपाः=पण्डितैः सह भाषन्ते—राजा पण्डितों के साथ बातचीत करते

नृपैः पण्डितैः सह भाष्यते=राजाओं से पण्डितों के साथ बातचीत की जाती

बुधास्तत्त्वमवगच्छन्ति=विद्वान् तत्त्व जानते हैं।

बुधैस्तत्त्वमवगम्यते=विद्वानों से तत्त्व जाना जाता है।

सज्जना न कदाऽप्यसत्यं वदन्ति=सज्जन कभी भी झूठ नहीं बोलते

सज्जनैर्न कदाऽप्यसत्यमुच्यते=सज्जनों से कभी झूठ नहीं बोला जाता

वनदेवता नृपाणां कीर्तिं गायन्ति=वनदेवियाँ राजाओं की कीर्ति गाती

वनदेवताभिर्नृपाणां कीर्तिर्गीयते=वनदेवताओं से राजाओं की कीर्ति गाई जाती है।

यद्भवान् इच्छति तत्सर्वमहं करोमि=आप जो चाहते हैं वह सब मैं करता

यद् भवता इष्यते तत्सर्वं क्रियते मया=आप से जो चाहा जाता वह सब मुझसे किया जाता है।

अहं गृहे तिष्ठामि=मैं घर में रहता हूँ।

मया गृहे स्थीयते=मुझसे घर में रहा जाता है।

'कर्तृवाच्यादि' प्रयोगों के कुछ नियम :—

कर्तृवाच्यम् :—

प्रयोगे कर्तृवाच्यस्य कर्तरि प्रथमा भवेत्।
द्वितीया कर्मणि तथा क्रिया कर्तृपदान्विता॥

यदि वाक्य में कर्तृवाच्य प्रयोग हो तो कर्ता प्रथमान्त और कर्म द्वितीयान्त प्रयुक्त होता है, तथा क्रिया के पुरुष और वचन कर्ता के अनुसार होते हैं। कि[illegible] कृदन्त होने पर उसके विभक्ति, वचन और लिङ्ग कर्ता के अनुसार होते हैं। [illegible]

तिङन्त में '=देवदत्त पुस्तक लिखति' और कृदन्त में ='सीता मुनिपत्नीं दृष्टवती'

कर्मवाच्यम् :—

२　　प्रयोगे कर्मवाच्यस्य तृतीया स्यात्तु कर्तरि ।
　　कर्मणि प्रथमा चैव क्रिया कर्मानुसारिणी ॥

कर्मवाच्य म कर्ता की विभक्ति तृतीया और कर्म की प्रथमा होती है । क्रिया कर्म के अनुसार होती है, अर्थात् कर्म का जो पुरुष तथा वचन हो, क्रिया के तिङन्त होनेपर वही 'पुरुष' और वही 'वचन' होता है । इस प्रकार कृदन्त क्रियापद के लिङ्ग, विभक्ति और वचन भी कर्म के अनुसार होते हैं । जैसे तिङन्त में 'देवदत्तेन पुस्तकानि लिख्यन्ते' । यद्यपि यहाँ कर्ता (देवदत्त) एकवचन का है तथापि कर्म (पुस्तक) बहुवचन का है इसलिए क्रिया में बहुवचन हुआ है । कृदन्त में जैसे —'तेन दृष्टा समुद्रा' ।

भाववाच्यम् —

३　　कर्माभाव. सदा भावे तृतीया चैव कर्तरि ।
　　प्रथम पुरुषश्चैकवचनञ्च क्रियापदे ॥

भाववाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है और कर्म नहीं होता । क्रिया सदा प्रथम पुरुष की एकवचनान्त ही होती है । जैसे :-'वय तिष्ठाम ', 'अस्माभि' स्थीयते' । इसी तरह -'यूय विद्वास भवत', 'युष्माभि विद्वद्भिर्भूयताम् ।

कर्तृवाच्यादिप्रयोगों मे क्रियापद के रूप बनाने के कुछ नियम :—

१—कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य के रूपों में धातु से य लगाकर आत्मनेपद के प्रत्यय लगाये जाते हैं । इन रचनाओं में धातुसे गणचिह्न (अ, अय आदि) नहीं लगाये जाते । जैसे —गम् = गम्यते । भू = भूयते ।

२—इकारान्त तथा उकारान्त धातुओं के स्वर में दीर्घ हो जाता है । जैसे — जि = जीयते स्तु = स्तूयते ।

३—कुछ आकारान्त धातुओं के आकार का इकार हो जाता है । जैसे -स्था= स्थीयते । दा = दीयते । गा = गीयते । मा = मीयते ।

४—ए, ऐ, ओ तथा औ जिन धातुओं के अन्त में हों उनको आकारान्त के समान ही समझना चाहिये । जैसे '-गै = गीयते । सो = सीयते ।

५—ऋकारान्त धातुओं के ऋ का रि हो जाता है । जैसे -कृ = क्रियते । हृ = ह्रियते ।

६—कुछ धातुओं के य्, व्, र्, ल्, के स्थान में क्रमशः इ, उ, ऋ और लृ हो जाते हैं। इस परिवर्तन को सम्प्रसारण कहते हैं। जैसे —यज् इज्यते। वप् = उप्यते।

धातुकोष :

प्र + अर्थ (१०गण)=प्रार्थना करना।	पा (१ गणः) =पीना।
कृ (८ गण) = करना।	रुद् (२ गणः)=रोना।
ज्ञा (९ गण) = जानना।	स्था (१ गण)=स्थित होना, ठहरना
दा (३ गण) = देना।	अनु + रुध् (७ गणः) आज्ञा मानना।
श्रु (१ गण) = सुनना।	
हन् (२ गण) मार डालना।	आ + दिश् (६ गण) = आदेश करना, आज्ञा देना।
पठ् (१ गणः)=पढ़ना।	

शब्दकोषः

आदेशः = आज्ञा।	ध्वनिः=आवाज।
चापः (धनु)=धनुष।	पौरः=नागरिक। दुम =वृक्ष।
प्राज्ञः = बुद्धिमान्। जवः = वेग।	किङ्कर = सेवक नौकर।
पथिकः = रास्तागीर।	प्राचीण्यम् (न०) = चतुराई।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

निष्का भादाणेभ्यो दीयन्ते।	ऋषयो जनेन वन्द्यन्ते।
नृपस्यादेशः श्रियते।	सूर्येण प्रकाश्यते।
अग्निना काष्ठ दह्यते।	ईश्वरेण भूयते।
शठो पुरुषैस्ताड्यते।	लोकैः प्रशस्यन्ते।
गुरुभिर्धर्म उपदिश्यते।	शिष्यैर्नम्यावहे।
किङ्करैः सेव्यसे।	मोदकाः स्वाद्यन्ते शिशुभिः।
मित्रैस्त्यज्ये।	छात्रैः श्लोकाः पठ्यन्ते।
व्याधिभिः पीड्यन्ते।	ओदनः पच्यते सूदैः।
धान्यस्य राशयो नीयन्ते।	देवो वन्द्यते।
नृपतिना चापेनाऽरयो जीयन्ते।	प्रभोरादेशोऽनुरुध्यते जनैः।
द्रुमेषु कपिभिः स्थीयते।	कान्तारे नरेशः मह्यते।
सारथी हन्येते।	प्रजा नृपतिना रक्ष्यन्ते।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

शत्रु बाण से मारा जाता है ।
बच्चे के हाथ पानी से धोये जाते हैं ।
नौकरों से स्वामी की सेवा की जाती है ।
तू कवियों से वर्णित किया जाता है ।
हम ईश्वर से रक्षित किये जाते हैं ।
तुम (दोनों) लोगों से जाने जाते हो ।
हाथियों पर सवारी की जाती है ।
हम (दोनों) नगरवासियों से प्रार्थित किये जाते हैं ।
संसार यतियों से छोड़ा जाता है ।
शरीर अन्न से पोषित किया जाता है ।
(दो) घोड़े चोरों से चुराये जाते हैं ।
जल वृक्षों पर छिड़का जाता है ।
कृष्ण का शरीर आभूषण से सजाया जाता है ।
बुद्धिमान् के गुण कवियों से प्रसिद्ध किये जाते हैं ।
चोर राजाओं से दण्डित किये जाते हैं ।
(दो) फल हरि से लाये जाते हैं ।
(दो) बाण छोड़े जाते हैं (मुच्) ।
(तुम्हें) राजा से आज्ञा दी जाती है ।
सुख मनुष्यों से सदा चाहा जाता है ।
समुद्र का जल नहीं पिया जाता ।
गुरुजन सदाचार से सन्तुष्ट किये जाते हैं ।
सैनिक सेनापति से गिने जाते हैं ।

शुद्ध करो —

तेन ग्रन्थ पठ्यते ।
रामो रावणं हन्यते ।
नृपेण तत्र गच्छति ।
ता. सुलेख. लिख्यते ।
तैः शीतल पियन्ति ।
रामस्य जनक. तत्र गच्छन्ति ।
मोदक बालक रोचते ।
देवो विजयति ।
अह त्वा पृच्छयसे ।
वय नदी गम्यते ।
कवय. श्लोकान् रच्यन्ते ।
शत्रून् हन्ति श्रीकृष्णेन ।
प्रज्ञाम् सर्वत्र पूज्यन्ते ।
हरि॰ जनकस्यादेशः अनुकण्यते ।
कपय॰ द्रुमेषु आरुह्यते
राम तस्य सह वनं गच्छति ।
नगरे वसति जन. बहवः ।

त्रयोदशः पाठः

भविष्यत्काल—

राम पठिष्यति = राम पढ़ेगा।

भृत्य ग्राम गमिष्यति = नौकर ग्राम जायगा।

उद्याने पुष्प द्रक्ष्यसि = बगीचे में तुम फूल देखोगे।

जनकौ पुत्रान् द्रक्ष्यतः = दो पिता पुत्रों को देखेंगे।

वयं बाणैः शत्रून् प्रहरिष्यामः = हम बाणों से शत्रुओं पर प्रहार करेंगे।

इन वाक्यों को देखने से प्रतीत होता है कि क्रिया अभी हुई नहीं और न हो रही है, किन्तु आगे होगी। 'राम पढ़ेगा' यहाँ राम का पढ़ना आगे होना है, अतः यह भविष्यत्काल है। इसमें लृट् लकार का प्रयोग होता है। हिन्दी में जिस क्रिया में गा, गे, गी आता है, उसका अनुवाद संस्कृत में भविष्यत्काल में किया जाता है। कर्ता में विभक्ति आदि करने के सब नियम वर्तमानकाल के समान ही हैं।

परस्मैपदम् :—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुष	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	वदिष्यसि	वदिष्यथः	वदिष्यथ
उत्तमपुरुष	वदिष्यामि	वदिष्यावः	वदिष्यामः

आत्मनेपदम् :—

प्रथमपुरुष	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
मध्यमपुरुष	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उत्तमपुरुष	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

शब्दकोष

स्त्रीलिङ्गशब्दाः—

आज्ञा = हुक्म। प्रमदा = युवती, तरुण स्त्री। ललना = स्त्री।

कला = भाग, हुनर। धारा = [illegible]। वापी = बावड़ी।

जननी = माता। रथ्या = सड़क। सखी = सहेली।

नारी = स्त्री। मही = पृथ्वी। [illegible] = [illegible]।

पत्नी = विवाहिता स्त्री, भार्या। रजनी = रात्रि। वेला = समय।

प्रजा = रियाया, सन्तान। लता = बेल। कन्या = लड़की।

पुँल्लिंगशब्दाः —

अभ्युदयः=उन्नति। स्वार्थः = मतलब।
समागमः = मेल, मिलना। आरम्भः = आरम्भ, शुरुआत।
प्रासादः = महल। भरः = बोझ।
बन्धुः = भाई, कुटुम्बी।

नपुंसकलिङ्गशब्दाः—

उपवनम् = बगीचा। भूषणम् = अलङ्कार, जेवर।
नाटकम् = नाटक। गमनम् = जाना, प्रस्थान।
तलम् = तल (ऊपरी भाग) सौधतलम्, प्रासादतलम् = छत।
बलम् = सेना, शक्ति।

त्रिलिङ्गशब्दाः (विशेषणानि) :—

आत्मीय = अपना। पर = श्रेष्ठ, बड़ा।
चतुर = होशियार। परम = श्रेष्ठ।
निपुण = प्रवीण।

सम = समान। (इस अर्थ वाले विशेषण के साथ तृतीया या षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे —रामः पुत्रेण समः—तुल्यः, पुत्रस्य समः—तुल्यः)।
अन्य = और, दूसरा। तद् = वह।
एतत् = यह। यद् = जो।
किम् = क्या। सर्व = सब।

सर्वनामों का प्रयोग किसी संज्ञाशब्द के स्थान पर और प्रायः विशेषणरूप से होता है।

धातुकोषः

सम्+गम् (आत्मने०)=परस्पर मिलना। सम्+वृध् = बढ़ना, समृद्ध होना।
शुच् (शोच्) (१ गण, प०) = शोक करना।
आ+चर् (गण प०) करना। विद् (४ गण, आ०) मौजूद होना।
तॄ (तर्) १ गण, प०)=पार उतरना, तैरना सम्+ईह् =(१ गणः, आ०) चाहना।

अव+तृ=उतरना ।
परि+नी (परिणय्)=विवाह करना ।
परि+वृ (५ गण, प०)=घेरना (कर्मवाच्ये-परिव्रियते) ।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

नार्यो हर्म्याणां वातायनेभ्य उत्सवं द्रक्ष्यन्ति ।
कृष्णः कलाः शिक्षिष्यते ।
रामो जनकस्य कन्यां परिणेष्यति ।
गङ्गा यमुनया प्रयागे सङ्गंस्यते ।
उद्यानस्य शोभां द्रक्ष्यति प्रमदा ।
नृपतेर्वंशस्य भरेण मही कम्पिष्यते ।
वने भ्रमरे दृश्येते ।
दास्यो महिषीं सेविष्यन्ते ।
शैलेभ्योऽवतरन्ति नद्यः ।
अवन्त्या (उज्जयिन्याः) कदा प्रतिनिवर्तिष्यध्वे (प्रतिनिवर्त्स्यथ) ।
क (के) एते बालाः ?
हरेरश्वो नक्ष्ययन्ति ।
केषु केषु शास्त्रेषु निपुणास्ते ?
किमधिकं गुरोः सेवायाः ?
एतस्मिन्नगरे वसामि ।
उपवने नृपस्य कन्ये रमेते ।
कुमारी सख्यौ भाषिष्यते ।
वराहाः सहचरीः शोचन्ति ।
लज्जा त्यक्ष्यतेऽविनीतैः ।
नृपतिना प्रजा रक्षिष्यन्ते ।
ललनाः प्रासादतलमारोदयन्ति ।
नृपस्याज्ञे अनुरुध्येते ।
रामस्य कथाः श्रोष्यन्ते ।
कुसुमानां माला कण्ठादपनीयन्ते ।
वाप्यां कमलान्युद्भवन्ति ।
ताभिस्ताभिः कथाभिः रजनीं नेष्यामः ।
सर्वा देवता नंस्यामः ।
अन्यदेतत् काननम् ।
कस्मै देवाय नमः ?
का वेला वर्तते ?
कोऽन्यो विद्यया समो बन्धुः ?
साधूनां समागमः सर्वेषामभ्युदयाय ।
केभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दास्यसि ?

संस्कृत में अनुवाद करो :—

कृष्ण यादवों को कथा कहेगा ।
वह अपने गले में फूलों की (दो) मालाएँ पहिनेगा ।
(हम दो) कुमारियों को देखेंगे ।
राजा की आज्ञा से मैं उज्जैन जाऊँगा ।
वह देवताओं की पूजा के लिए पुष्प लावेगा ।
कुमारी सखियों से गाना सीखेगी ।

हरि नदी पर जायेगा।
प्रजा राजा की आज्ञाओं को मानेगी।
हरि की पुत्रियाँ नृत्य सीखेंगी।
मनुष्य स्त्रियों की रक्षा करेंगे।
राम अपनी सन्तान की तरह प्रजा को सँभालेगा।
हरि (अपनी) वाणी से मित्रों को शान्त करेगा।
नगर नदियों से घिरा हुआ है।
वह मालाओं से अपना शरीर सजायेगा।
रानी अपनी दासी पर क्रोध करती है।
(दो) योधा हथियारों सहित (उन दोनों) नगरों से रवाना होंगे।
सूर्य के लाल प्रकाश से आकाश भूषित किया जाता है।
वे देवताओं से सुख का लाभ चाहते हैं।
रानी दासी को पारितोषिक देगी।
मैं अयोध्या की सड़कों पर रथ देखूँगा।
माता का हृदय अपनी पुत्री के विषय में बहुत स्नेहमय होता है।
रानी की आज्ञा से शठ को दण्ड दिया जायगा।
मैं लताओं के फूलों को इकट्ठा करने के लिए बाग में जाऊँगा।
वह राजा की आज्ञाओं के पालन करने में सावधान है।
तुम देवताओं को नमस्कार करते हो?
दिन दिन वह अनेक विद्याओं में कुशल होता जायगा।
इस आश्रम में अगस्त्य ऋषि रहते हैं।
यह बालक किसका पुत्र है?
वह (स्त्री) कौन है?

चतुर्दशः पाठः

अनद्यतनभूतकालः—

सूर्योऽस्तमगच्छत् = सूर्य अस्त हो गया।
मेघेभ्यो जलबिन्दवोऽपतन् = मेघ से जल की बूँदें गिरीं।
व्याधो बाणेन मृगमविध्यत् = शिकारी ने बाण से हिरन को घायल किया।
चित्रया चन्द्र इव रामः सीतया व्यराजत = चित्रा (नक्षत्र) से चन्द्रमा के समान राम सीता से सुशोभित हुए।

उपर्युक्त वाक्यों में क्रिया समाप्त हो चुकी है अत वे भूतकालिक क्रियाएँ हैं। जिस क्रिया का होना अतीत काल में पाया जाय, उसे भूतकाल की क्रिया कहते हैं। बीती हुई रात के उत्तरार्ध से अर्थात् १२ बजे से पूर्व का काल अनद्यतन भूत काल कहा जाता है। इस भूतकाल में लङ् लकार का प्रयोग होता है। लङ् लकार

के रूप बहुत कुछ वर्तमानकाल के रूपों के तुल्य होते हैं। केवल थोड़ा सा [illegible] है। विभक्ति आदि के प्रयोग में कोई भेद नहीं है।

इस काल का अनुवाद करने में इस पर विशेष ध्यान रखना चाहिए [illegible] हिन्दी में वर्तमानकाल के कर्ता के लिए 'ने' का प्रयोग होता है, परन्तु [illegible] में 'उसने भोजन किया' इत्यादि वाक्यों में कर्ता तृतीयान्त प्रयुक्त होता है किन्तु संस्कृत में ऐसा नहीं है। कर्तृवाच्य के प्रयोग में कोई भी काल हो क[illegible] प्रथमान्त ही रहेगा। 'शिकारी ने बाण से [illegible]' इस वाक्य में कर्ता शिकारी [illegible] प्रथमा विभक्ति ही होगी। जैसे :—'व्याधो बाणेन [illegible]'।

भू (परस्मैपदी) —

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुषः	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यमपुरुषः	अभवः	अभवतम्	अभवत
उत्तमपुरुषः	अभवम्	अभवाव	अभवाम

युध् (आत्मनेपदी) :—

प्रथमपुरुषः	अयुध्यत	अयुध्येताम्	अयुध्यन्त
मध्यमपुरुषः	अयुध्यथाः	अयुध्येथाम्	अयुध्यध्वम्
उत्तमपुरुषः	अयुध्ये	अयुध्यावहि	अयुध्यामहि

शब्दकोषः

अजः (पु०) = बकरा।
असारता (स्त्री०) = सारहीनता।
गोष्ठम् (न०) = गोशाला।
तनय (पुं०) = पुत्र।
पुरतः (अव्यय) सामने।
महिषः (पु०) = भैंसा।
मुष्टिः (पु० स्त्री०) = मुट्ठी।
शनैः (अव्यय) = धीरे।
संकटम् (न०) = कठिनाई।
समराङ्गणम् (न०) = युद्धभूमि
हर्षः (पुं०) = खुशी, आनन्द।
आशीर्वादः (पुं०) = आशीर्वाद
गोपः (पुं०) = अहीर, ग्वाला।
प्रमाणम् (न०) = सबूत।
धार्तराष्ट्रः (पु०) = धृतराष्ट्र का पुत्र
नृशंस (वि०) = क्रूर, दुष्ट।
पञ्जरः (पु० न०) = पिंजड़ा।
मदिरा (स्त्री०) = मद्य, शराब।

मारुतः (पुं०)=वायु। अवधीरणा (स्त्री०) = तिरस्कार, अपमान।
मार्गः (पु०) = रास्ता। आरोपणम् (न०) = लगाना, पौधा लगाना।
वसुधा (स्त्री०) = पृथ्वी। कबरी (स्त्री०) = वेणी, चोटी।
विरावः (पु०) = चिल्लाहट। ग्रहणम् (न०) = पकड़ना।
शवः (पुं०) मुर्दा। जालम् (न०) = जाल।
सञ्चलनम् (न०)= इधर उधर फिरना। दुष्कृतम् (न०) = पाप, दुष्कर्म।
ज्योत्स्ना (स्त्री०) = चाँदनी। परम् (अ०) = तथापि, लेकिन।
नायकः (पु०) = मुखिया, अगुआ। प्राची (स्त्री०) पूर्वदिशा।
पान्थः (पुं०) = रास्तागीर। भूपः (पु०) = राजा।
प्राश्निकः (पु०)=परीक्षक। वीर्यम् (न०) पराक्रम, वीरता।
रमणः (पु०) प्यारा, पति। समूहः (पुं०) = झुण्ड।
सचिवः (पु०) = मन्त्री।
असुरः (पु०) = राक्षस।

धातुकोषः

गै (१ गण प०) = गाना।
ध्वस् (१ गण, आ०) = नष्ट होना।
अव + मन् (४ गण, आ०) = तिरस्कार करना।
रम् = क्रीडा, करना, सुख पाना।
लज्ज (६ गण, आ०) शरमाना।
स्रस् (१ गण, आ०) गिरना।
अति+सृज् (६ गण, प०) देना।
नि + मन्त्र (१ गण आ०) = निमन्त्रण भेजना, न्यौता देना।
वि + मृश् (६ गण, प०) =विचार करना, जाँचना।
स्पर्ध् (१ गणः प०) = बराबरी करना, होड़ करना।
उप + हस् (१ गण, प०) = हँसी करना।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

सीता गोदावर्यास्तीरमगच्छत्।
तालने छायायामुपाविशताम्
कलासु पर प्राचीण्यमविन्दः।
नागस्त वालमदशत्।
तस्या हृदयमवेपत।
अरण्ये महिपानपश्यम्।
दशरथो रामस्य वियोगे प्राणानत्यजत्।
पुत्रस्य शोकेनाऽम्रियत।
रथं समराङ्गणमनयम्।
जनकस्तनयमाह्वयत्।
संसारस्याऽसारतामबोधम्।

द्रष्टृ (त्रि०)=देखने वाला।
द्वेष्टृ (त्रि०)=द्वेष करने वाला।
शौर्यम् (न०)=पराक्रम।
सन्निधिः (पुं०)=समीप।

स्त्रीलिङ्गशब्दाः—

अनुरक्ति=प्रेम, प्रीति।
कान्ति=तेज, प्रकाश।
कृति=कार्य, काम।
गति=गमन, चाल।
दुष्कृति=बुरा काम।
दुहितृ=बेटी, पुत्री।
धृति=धैर्य धारण।
धेनु=गाय।
प्रकृति=स्वभाव, प्रधानमण्डल।
प्रतिकृति=प्रतिमा, सदृश।
भक्ति=प्रेमपूर्ण सेवा।
भूति=ऐश्वर्य, वैभव।
मुक्ति=मोक्ष।
मूर्ति=प्रतिमा।
यातृ=देवरानी, दौरानी, जिठ
रति=विषयसुख, प्रेम।
वधू=बहू, भार्या।
वसति=निवासस्थान।
वृत्ति=जीविका, व्यापार।
श्रुति=सुनना, कान, वेद।
सुकृति=अच्छा काम।
स्मृति=स्मरण, धर्मशास्त्र।
स्वसृ=बहिन।

धातुकोषः

अनु+इष् (४ गण, प०)=खोजना, पता लगाना।
निर्+अस् (४ गण, प०)=फेंकना, तितर-बितर करना।
मृ=मरना, (कर्मवाच्ये-म्रियते)।
निर्+मा=बनाना, उत्पन्न करना, (कर्मवाच्ये-निर्मीयते)।
अभि+धा (३ गण उ०)=कहना, नाम रखना, (कर्म०-अभिधीयते)।
अनु+गम्=अनुसरण करना, पीछे पीछे जाना।
गल् (१ गण, प०)=बूंद बूंद गिरना, टपकना।
छिद् (७ गण, उ०)=काट
(कर्मवाच्ये-छिद्यते)
प्र+नी=(प्राप्) मिलना, र
अनु+मन् (४ गण आ०)=स्वीकार करना, सम्मति देन
वाञ्छ् (१ गण, प०)=इच्छा क
अधि+कृ (८ गण, उ०)=अ
पाना। (कर्मवाच्ये अधिक्रि
=अधिकृत होना।
प्र+ईक्ष् (देख)=देखना।
स्निह्=(४ गण, प०) स्नेह क
प्यार करना।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

ायुना तरवः कम्पन्ते।
ामरा मधु पिबन्ति।
मुभिर्भृत्या आदिश्यन्त।
ाश्वस्य कर्तारं नमामि।
ोता लक्ष्मणं देवरमन्वगच्छत्।
डागस्य जलं मार्गं गन्तृभिरपीयत।
श्वरस्य स्रष्टुरिच्छाऽलङ्घनीया।
ाधुनि माधुर्यमस्ति।
ूलस्य राशावग्नेरिव मृदुनि मृगस्य शरीरे निशितस्य याणस्य पात।
ःत्र दुष्कृतेरुत्पद्यते।
ामातुः ऋष्यशृङ्गस्याश्रमं मातरोऽगच्छन्।
ारायणस्य कृतयो हरेः प्रीत्यै न भविष्यन्ति।
ाध्वो नद्या जलमानेष्यन्ति।
ोभेन बुद्धिश्चलति।
कन्याया भर्तारं जामातरं वदन्ति।
नार्योः कपोलयोर्नेत्राभ्यामश्रूणि गलन्ति।
पितरो वन्द्यन्ते पुत्रैः।
पाण्डवा द्वेष्टॄन् युद्धेऽजयन्।
मनुना धर्मः प्राणीयत।
मात्रा प्रजाः सृज्यन्ते।
याचका दातारं नालभन्त।
साधवो मृत्योर्भयं न गणयन्ति।
इन्दौ कलङ्को दृश्यते।
कुरुभ्यो दूत आगच्छत्।
नप्तुर्लाभेऽतीवोत्कण्ठा भारतवर्षीयाणाम्।
सुजनस्य कीर्तिर्लोके प्रसरति।
रामः प्रीत्या पुत्रमाश्लिष्यति।
वृद्धेः प्रकर्षः कीर्तये भवति।
मातुर्ननान्दरं चापृच्छत् सीता पश्चात् पितुरगच्छद् गृहम्।
प्रकृतिभिर्नृपः सेव्यते।
गोपो धेनूः रक्षिष्यति।
चन्द्रस्य कान्तिं द्रक्ष्यति शिशुः।
स्मृत्या धर्मः कथ्यते।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

आकाश धूल से भरा जाता है।
राजा ने नगर के रक्षकों को बुलाया।
राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ वन जायगा।
कुमार्ग से जाने वालों की मनुष्यों द्वारा निन्दा की जाती है।
मैंने ग्रन्थकर्ता से एक पुस्तक पाई।
रावण के सिर बाणों द्वारा राम से काटे गये।
बहुधा विघ्नों के भय से मनुष्यों द्वारा काम प्रारम्भ नहीं किया जाता।
दुर्जन की जीभ की नोक पर शहद रहता है, परन्तु हृदय मे विष भरा रहता है।

विश्वामित्र के साथ राम का वन को जाना (उसके) पिता द्वारा स्वीकृत किया गया।
नारायण हरि के दामाद के घोड़े देखेगा।
यह स्त्री (अपनी) माता के घर जाने के लिए अपने पति से आज्ञा प्राप्त करेगी।
उत्तरी भारतवर्ष में युवतियों की नम्रता प्रशंसनीय है।
नारायण का नाश उसके कर्मों का फल है।
सीता का मुख कान्ति से चन्द्रमा के समान है।
परशुराम ने (अपने) वैरियों को फरसे से मारा।
अश्वों का स्वामी अपने मन्त्रियों से बोलेगा।
पिता अपनी पुत्रियों को बहुत धन देगा।

यह श्रोताओं से क्षमा माँगता है।
आर्य कुरुदेश में रहते थे।
विष्णु रमा के पति का मित्र है।
सीता ने (अपनी) ननद के पति के ... को प्रणाम किया।
सीता सदा अपनी सास को प्रसन्न रखती थी।
सम्राज्ञी रानियों को ... में ... करेगा।
मनुष्य का स्वभाव उसके कर्मों से ... जाता है।
क्षमा मनुष्यों का सर्वोत्तम आभूषण ...
मनुष्य की बुद्धि का विकास उसकी विद्या का परिणाम है।
स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ ... को गईं।

—:०:—

षोडशः पाठः

भाषा :—

१ हरिं भज=हरि की सेवा कर।
२ ग्रन्थ प्रवर्तताम्=ग्रन्थ प्रारम्भ होवे।
३ ... ...=... ..., ... कर।
४ देव! प्रसीद अपराधान् क्षमस्व=हे देव ... अपराध क्षमा करो
५ नद्यो ... ... को पार करे ... करें)।
६ गुरून्नति ...
७ ...

आज्ञा में लोट् लकार का प्रयोग होता है।

संस्कृत में इस लकार से अधोलिखित अर्थ प्रकट किये जाते हैं :—

१—किसी को किसी कार्य के करने की आज्ञा देना। जैसे :—प्रथम वाक्य में हरि को भजने का आदेश शिष्यादि को दिया गया है।

२—किसी कार्य के करने का समय विधान करना। जैसे :—द्वितीय वाक्य में नाच प्रारम्भ होने का निर्देश है।

३—इच्छा, प्रार्थना और आशीर्वाद।

प्रथमगणः, भू (परस्मैपदम्) :—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुष	भवतु	भवताम्	भवन्तु
मध्यमपुरुष	भव	भवतम्	भवत
उत्तमपुरुष	भवानि	भवाव	भवाम

प्रथमगणः, वृत् (आत्मनेपदम्).—

प्रथमपुरुष	वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्
मध्यमपुरुष	वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्
उत्तमपुरुष	वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै

शिवो मां रक्षतात्=शिव मेरी रक्षा करे। आशीर्वाद के अर्थ में प्रथम और मध्यम पुरुष के एकवचन में एक पक्ष में तात् प्रत्यय लगाने से दो दो रूप होते हैं —

प्र० पु० रक्षतु-रक्षतात्। म० पु० रक्ष-रक्षतात्।

शब्दकोषः

अपराधः (पु०) = कसूर।
डिम्भः (पुं०) = बालक।
दृढम् (क्रि० वि०) = दृढ़ता से।
वंशः (पु०) = कुल, खानदान।
वयस्यः (पु०) = मित्र, उमर में बराबरी का, साथी।
पार्थिवः (पु०) = राजा।
दुर्गम् (न०) = कठिनता, किला।
सहचर (वि०) = साथी।
(स्त्री० सहचरी)।
प्रतिक्रिया (स्त्री०) = बदला।
सत्त्वम् (न०) = सत्त्वगुण, अस्तित्व।
सुवर्णकारः (पु०) = सुनार।
असन्तुष्ट (वि०) = सन्तोषरहित।

विश्वामित्र के साथ राम का वन को जाना (उसके) पिता द्वारा स्वीकृत किया गया।
नारायण हरि के दामाद के घोड़े देखेगा।
वह स्त्री (अपनी) माता के घर जाने के लिए अपने पति से आज्ञा मांगेगी।
उत्तरी भारतवर्ष में युवतियों की नम्रता प्रशंसनीय है।
नारायण का नाश उसके कर्मों का फल है।
सीता का मुख कान्ति से चन्द्रमा के समान है।
परशुराम ने (अपने) वैरियों को फरसे से मारा।
अवन्ती का स्वामी अपने मन्त्रियों से बोलेगा।
पिता अपनी पुत्रियों को बहुत धन देगा।
वह श्रोताओं से क्षमा माँगता है।
आर्य कुरुदेश में रहते थे।
विष्णु रमा के पति का मित्र है।
सीता ने (अपनी) ननद के पति श्रृङ्ग को प्रणाम किया।
सीता सदा अपनी सास को प्रसन्न रखती थी।
सन्यासी रात्रियों को ध्यान में व्यतीत करेगा।
मनुष्य का स्वभाव उसके कर्मों से जाना जाता है।
क्षमा मनुष्यों का सर्वोत्तम आभूषण है।
मनुष्य की बुद्धि का विकास उसकी शिक्षा का परिणाम है।
स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ बगीचे को गईं।

—:०:—

षोडशः पाठः

आज्ञा :—

१ हरिं भज=हरि की सेवा कर।
२ नृत्य प्रवर्तताम्=नाच प्रारम्भ होवे।
३ लक्ष्मीश्चपला, मा तां सेवस्व=लक्ष्मी चञ्चल है, उसकी सेवा मत कर।
४ देव! प्रसीद अपराधान् क्षमस्व=हे देव! प्रसन्न हो, अपराध क्षमा करो।
५ नरो दुर्गाणि तरतु भद्राणि च पश्यतु=मनुष्य कठिनाइयों को पार करे और कल्याण देखे (प्राप्त करे)।
६ गुरूनभिवादयध्वम् = तुम लोग गुरुओं को नमस्कार करो।
७ अस्मिन् घोरेऽरण्ये कथ वसानि!=इस भयानक जंगल में मैं कैसे रहूँ!

आज्ञा में लोट् लकार का प्रयोग होता है।

संस्कृत में इस लकार से अधोलिखित अर्थ प्रकट किये जाते हैं :—

१—किसी को किसी कार्य के करने की आज्ञा देना। जैसे –प्रथम वाक्य में हरि को भजने का आदेश शिष्यादि को दिया गया है।

२—किसी कार्य के करने का समय विधान करना। जैसे –द्वितीय वाक्य में नाच प्रारम्भ होने का निर्देश है।

३—इच्छा, प्रार्थना और आशीर्वाद।

प्रथमगणः, भू (परस्मैपदम्) :—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुष	भवतु	भवताम्	भवन्तु
मध्यमपुरुष	भव	भवतम्	भवत
उत्तमपुरुष	भवानि	भवाव	भवाम

प्रथमगणः, वृत् (आत्मनेपदम्).—

प्रथमपुरुष	वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्
मध्यमपुरुष	वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्
उत्तमपुरुष	वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै

शिवो मां रक्षतात्=शिव मेरी रक्षा करे। आशीर्वाद के अर्थ में प्रथम और मध्यम पुरुष के एकवचन में एक पक्ष में तात् प्रत्यय लगाने से दो दो रूप होते हैं —

प्र० पु० रक्षतु-रक्षतात्। म० पु० रक्ष-रक्षतात्।

शब्दकोषः

अपराधः (पु०) = कसूर।

डिम्भः (पुं०) = बालक।

दृढम् (क्रि० वि०) = दृढ़ता से।

वंशः (पु०)= कुल, खानदान।

वयस्यः (पु०) = मित्र, उमर में बराबरी का, साथी।

पार्थिवः (पु०) = राजा।

दुर्गम् (न०) = कठिनता, किला।

सहचर: (वि०)= साथी। (स्त्री० सहचरी)।

प्रतिक्रिया (स्त्री०)=बदला।

सत्त्वम् (न०)=सत्त्वगुण, अस्तित्व।

सुवर्णकारः (पु०) = सुनार।

असन्तुष्ट (वि०) सन्तोषरहित।

प्रतीकारः (पु०)=उपाय ।
अभिधानम् (न०)=नाम ।
वेदना (स्त्री०)=पीड़ा ।
ईश्वर. (पु०)=समर्थ, धनाढ्य ।
चल (वि०)=चपल ।
पथ्य (वि०)=हितकारक ।
द्विज. (पु०)=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों को द्विज कहते हैं । ब्राह्मण, पक्षी, चन्द्रमा, दाँत ।
घोर (वि०)=भयानक ।
पटु (वि०)=होशियार ।
लोल(वि०)=चञ्चल, अस्थिर, तृष्णायु

अव्ययम् —

इति=यह, ऐसा ।
तथा=वैसा ।
मा=नहीं (यह प्रायः आशार्थक लोट् लकार के साथ आता है ।)
शीघ्रम्=जल्दी ।
रेरे=हे, ऐ ।
तत =तब पीछे ।
तावत्=तब तक, वाक्य में सौन्दर्य के लिए भी इसका प्रयोग होता है ।
यथा=जैसा ।
स्वैरम्=धीरे, स्वच्छन्दता से ।

धातुकोषः

अभि + वाद् (१० गण, आ०) = नमस्कार करना ।
प्रति+पद् (४ गण, आ०) = स्वीकार करना, आचरण करना ।
प्र+मद् (४ गण, प०)=असावधानी करना ।
अव + गाह् (१ गण, आ०) = स्नान करना ।
आ+मन्त्र् (१० गण, आ०)= आज्ञा, अनुमति देना ।
प्र + सद् (सीद्) (१ गण, प०) प्रसन्न होना ।
वि + श्रम् (४ गण आ०)=आराम करना, सुस्ताना ।
अनु+स्था (तिष्ठ् १ ग० प०)= सिद्ध करना, मानना ।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

जयतु जयतु देव ।
चकोराश्चन्द्रिकां पिबन्तु ।
आचार तावत् प्रतिपद्यस्व ।
आर्य ! इदमासनम् , उपविशतु भवान् ।
स्वैरं स्वैरं गच्छतु भवान् ।
चक्रवाकि ! आमन्त्रयस्व सहचरम् ।
दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छे श्वरे धनम् ।
बीराधश्रमारोढव्याम् ।

रे रे मा विनयं त्यजत।	सख्यौ ! पुष्पाण्यानयतम्।
वयस्योपवनं प्रविशाव	नराणां व्याधयो नश्यन्तु।
मयूरी प्रासादस्य शिखरे नृत्यताम्।	आसनयोर्निषीदतम्।
नृपतयः सर्वदा प्रजा धर्मेण रक्षन्तु	शत्रो प्रतिक्रियामुपदिशत।
सत्यान्मा प्रमाद्याम।	विश्राम्यन्तु पान्थास्तरोश्छायायाम्।
आत्मनः पुत्राणां प्रवृत्त्युपलब्धये दासं श्रीनगरं प्रहिणु।	तपसां फलमनुभवतु।
तत् किं वृत्तमिति कथय।	माऽस्मानवधीरय।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

बालको ! पाठशाला को जाओ।	लड़की और लड़कियों को लड्डू दो।
अच्छे पुरुषों से द्वेष मत करो।	हम बुद्धिमानों के उपदेशों का स्मरण करें।
ईश्वर राजा की रक्षा करे।	राम की जीत में सन्देह न करो।
हरि ! और माधव ! वृथा बात मत करो।	वह सोमरस पीवे।
मनुष्यों के शत्रु इस प्रकार नष्ट हों।	बालकों ! गूंगे जीवों को कष्ट मत दो।
वह अपने वंश के सत्कर्मों का स्मरण करे।	(वे दोनों) पुत्र अपनी माता का स्मरण करें।

शब्दकोषः

अभिलाषः (पुं०)=इच्छा, कामना।	ऋजुता (स्त्री०) = सरलता।
खलः (पु०) = दुष्ट, दुर्जन।	पात्रम् (न०) = योग्य मनुष्य, वर्तन।
प्रश्रयः (पु०) = नम्रता।	श्रमः (पु०) = परिश्रम, थकावट
समृद्धि (स्त्री०) = ऐश्वर्य, विपुलता।	सूनुः (पुं०) = पुत्र, छोटा भाई।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

गुरून् वन्दध्वम्।	अपराधिनं मा क्षमस्व।
कीर्तये यतामहे।	एतेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दातुमारभस्व।
शृगालौ म्रियेताम्।	शत्रुभिः सह युध्यस्व।
एतैरालापैरात्मनः कार्पण्यं माऽपवृणुध्व।	भर्तारं सेवेथाम्।
चित्तं स्वास्थ्यं लभताम्।	नरा धान्यस्य समृद्ध्या मोदन्ताम्।

कन्ये गीतं शिक्षेताम्।
वार्ता श्रूयन्ताम्।
सङ्गीतमारभामहे।
प्रेक्षस्व वाप्याः शोभाम्।
कथं दुःखं सहे।
आचारं प्रतिपद्येथाम्।

नृपस्य सूनवः पराक्रमेण प्र
शन्ताम्।
प्रजानां कल्याणाय क्लेशाः स
न्तां नृपैः।
प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः

संस्कृत में अनुवाद करो :—

हम आम चखें।
(दो) पुस्तकें यहाँ लाई जाँय।
मित्रों की उन्नति पर आनन्द मनाओ।
योग्य मनुष्यों को धन दिया जाय।
पक्षी उस वृक्ष की शाखाओं से उड़ जाँय।
ब्राह्मणों को अन्न के ढेर दिये जाँय।
तुम ईश्वर की आज्ञा मानो।

तुम (दोनों) देवदत्त को शत्रु मत मानें
हम अपने दुष्कर्मों पर लज्जित होवें
दया के गुण जाँय।
तुम सदा सत्य की खोज करो।
शठ सज्जनों की सरलता पर मुस्करावें
स्वामी से सेवक के दो अपराध क्ष
किये जाँय।

सप्तदशः पाठः

कृदन्त —

(१) क्त, क्तवतु प्रत्ययौ —

१ कुम्भकारः घटमकरोत्–कुम्भकारेण घटः कृतः=कुम्हार से घड़ा बनाया गया
२ तन्तुवायेन शाटी निर्मिता=जुलाहे ने साड़ी बनाई।
३ बालेन फलं भक्षितम्=बालक ने फल खाया।
४ मया हसितम्=मने हँसा—मैं हँसा।
वृक्षमारूढः कपिः=बन्दर पेड़ पर चढ़ा।
६ क्व गतो देवदत्तः ? = देवदत्त कहाँ गया ?
[illegible] अहं घटं कृतवान् = मैंने घड़ा बनाया।
८ तौ पुस्तकमानीतवन्तौ = उन दोनों ने पुस्तक लाई।
९ वनं गतो रामः ऋषीन् प्राणमत् = वन में गये हुए राम ने ऋषियों को प्रणाम किया।

उपर्युक्त वाक्यों को ध्यान से देखिये :—

१—प्रथम वाक्य में भूतकालिक क्रिया 'अकरोत्' के स्थान पर 'कृत.' का प्रयोग किया गया है। यह 'कृ=क्त' का प्रयोग है। प्रथम वाक्य के दोनों भागों की तुलना करने से विदित होता है:—'क्त' प्रत्ययान्त क्रिया के साथ कर्ता में तृतीया तथा कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है, अर्थात् इसका प्रयोग कर्मवाच्य प्रयोग के समान होता है। परन्तु कर्मवाच्य-प्रयोग में कर्म के लिङ्ग का क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं होता, बल्कि इस प्रत्यय के प्रयोग में कर्म के लिङ्ग के अनुसार ही क्त प्रत्ययान्त पद का लिङ्ग होता है। (२-३ वाक्यों को देखिये) यह सुबन्त पद होता है।

२—अकर्मक धातुओं से भूतकाल में क्तप्रत्यय प्राय नपुंसकलिङ्ग में होता है। इस क्तप्रत्यय के साथ भी कर्ता म तृतीया विभक्ति ही होती है। (मैंने हँसा अर्थात् मैं हँसा।) यहाँ मैंने यह तृतीया विभक्ति है।

३—'क गतो देवदत्त.' इस वाक्य में पूर्वोक्त नियम से कर्ता 'देवदत्त' में प्रथमा विभक्ति है। इसी प्रकार 'वृक्षमारूढ. कपि.' इस वाक्य में कर्ता 'कपि' में प्रथमा विभक्ति है। इससे विदित होता है —* कुछ धातु ऐसी भी हैं जिनसे 'क्त' प्रत्यय कर्ता मे होता है। इस तरह के 'क्त' प्रत्यय के प्रयोग में कर्त्ता में प्रथमा तथा कर्म मे द्वितीया विभक्ति होती है अर्थात् इसका प्रयोग कर्तृवाच्य के समान होता है।

४—नवम वाक्य म 'वन गत' यह 'राम' का विशेषण है। कभी कभी *'क्त' प्रत्ययान्त शब्द विशेषणरूप से भी प्रयुक्त होता है। उस समय इनमें* विशेष्य के अनुसार ही लिङ्ग, वचन आदि होते हैं।

५—'क्त' प्रत्यय के समान भूतकाल मे 'क्तवतु' प्रत्यय भी होता है परन्तु यह सर्वदा कर्ता में ही होता है और कर्तृवाच्य प्रयोग के अनुसार कर्ता और कर्म में विभक्तियाँ होती हैं। 'क्तवतु' प्रत्ययान्त क्रिया म लिङ्ग, वचन कर्ता के समान होते हैं। यह प्रत्यय भी विशेषण रूप से प्रयुक्त होता है, उस समय इसमें भी विशेष्य के अनुसार ही लिङ्ग, वचन आदि होते हैं।

---

* गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थाऽऽसवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च'। ग त्यर्थक अकर्मक, श्लिष्, शीङ्, स्था, आस, वस्, जन्, रुह्, जॄ (दिवादि) इन धातुओं से 'क्त' प्रत्यय कर्ता में होता है।

(२) क्त्वा प्रत्यय.—

शत्रून् जित्वा निवर्तते वीर = सिपाही शत्रुओं को जीतकर लौट रहा है।

भुक्त्वा ग्रामं गच्छ = खाकर गाँव को जा।

अश्वमारुह्य वनं गतः = घोड़े पर चढ़कर वन को गया।

अरीन् विजित्य नृपो महीं लभते = राजा शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी पाता है।

१—'सिपाही शत्रुओं को जीतकर लौटता है,—यहाँ 'जीतना' तथा 'लौटना' दो क्रियाएँ हैं। इनमें से जीतना प्रथम तथा लौटना क्रिया बाद में होती है। दोनों क्रियाओं का करने वाला भी एक ही 'सिपाही' है। अतः—

(क) जब एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया की जाती है तब प्रथम होने वाली क्रिया से क्त्वा प्रत्यय किया जाता है।

(ख) दोनों क्रियाओं का कर्ता एक ही होना चाहिए।

२—'क्त्वा' प्रत्ययान्त क्रिया के पूर्व यदि कोई उपसर्ग रखा जावे तो क्त्वा के स्थान पर य हो जाता है। जैसे —विजित्य, आरुह्य आदि।

३—'क्त्वा' प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय रूप से प्रयुक्त होती है। जित्वा, भुक्त्वा, आरुह्य, विजित्य—ये सब अव्ययपद हैं।

४—'क्त्वा' प्रत्ययान्त क्रियाओं के कर्म आदि भी मुख्य क्रियाओं के समान ही होते हैं और उनमें विभक्तियाँ भी उसी प्रकार होती हैं। 'शत्रून्' जित्वा यहाँ 'जित्वा' क्रिया का 'शत्रून्' कर्म है अतः वह द्वितीयान्त है।

(३) तुमुन् प्रत्यय.—

इन्द्रियाणि जेतुमुपक्रमते = इन्द्रियों को जीतना प्रारम्भ करता है।

भोक्तुं यतते = खाने के लिए यत्न करता है।

१—जब एक क्रिया करने के लिए दूसरी क्रिया की जाती है तब प्रथम क्रिया (जिसके लिए दूसरी क्रिया की गई है) से तुमुन् प्रत्यय होता है। इन्द्रियों को जीतने के लिए (जेतुं) प्रारम्भ करता है (उपक्रमते)—यहाँ जीतने के लिए प्रारम्भ करता है, अतः जीतना क्रिया में तुमुन् प्रत्यय हुआ है। 'तुमुन्' प्रत्ययान्त पदों को हेत्वर्थक कृदन्त कहते हैं। ये भी अव्यय होते हैं।

२—'तुमुन्' प्रत्ययान्त क्रिया के कर्मादि भी मुख्य क्रिया के समान ही होते हैं, परन्तु कर्ता का सम्बन्ध मुख्य क्रिया से ही होता है।

कुछ मुख्य मुख्य धातुओं के कृदन्तरूप नीचे दिए जाते हैं :—

धातु	अर्थ	क्तप्रत्य०	क्त्वाप्र०	तुमुन्प्रत्ययान्त
अस्	फेंकना	अस्त	अस्त्वा, असित्वा	असितुम्
कृष्	जोतना	कृष्ट	कृष्ट्वा	क्रष्टुम्, कर्ष्टुम्
क्रम्	चलना, जाना,	क्रान्त	क्रन्त्वा, क्रान्त्वा, क्रमित्वा	क्रमितुम्
क्लम्	थकना	क्लान्त	क्लमित्वा, क्लान्त्वा	क्लमितुम्
खन्	खोदना	खात	खात्वा, खनित्वा	खनितुम्
गम्	जाना	गत	गत्वा	गन्तुम्
गुह्	छिपाना	गूढ	गूढ्वा, गूहित्वा	गूहितुम्, गोढुम्,
जन्	उत्पन्न होना	जात	जनित्वा	जनितुम्
तुष्	प्रसन्न होना	तुष्ट	तुष्ट्वा	तोष्टुम्
त्यज्	छोड़ना	त्यक्त	त्यक्त्वा	त्यक्तुम्
दह्	जलाना	दग्ध	दग्ध्वा	दग्धुम्
दिश्	दिखाना	दिष्ट	दिष्ट्वा	देष्टुम्
दृश्	देखना	दृष्ट	दृष्ट्वा	द्रष्टुम्
धा	धारण करना, रखना	हित	हित्वा	धातुम्
नम्	नमस्कार करना	नत	नत्वा	नन्तुम्
पच्	पकाना	पक्व	पक्त्वा	पक्तुम्
प्रच्छ्	पूछना	पृष्ट	पृष्ट्वा	प्रष्टुम्
बन्ध्	बाँधना	बद्ध	बद्ध्वा	बन्द्धुम्
भुज्	खाना	भुक्त	भुक्त्वा	भोक्तुम्
मन्	मनना, विचार करना	मत	मत्वा	मन्तुम्
मस्ज्	डूबना	मग्न	मक्त्वा, मङ्क्त्वा	मङ्क्तुम्
मृ	मरना	मृत	मृत्वा	मर्तुम्
यज्	पूजा करना	इष्ट	इष्ट्वा	यष्टुम्

धातु	अर्थ	क्तप्रत्य०	क्त्वाप्र०	तुमुन्प्रत्ययान्त
रम्	क्रीडा करना	रत	रमित्वा, रन्त्वा	रन्तुम्
रुह्	चढ़ना	रूढ	रूढ्वा	रोढुम्
लभ्	प्राप्त करना	लब्ध	लब्ध्वा	लब्धुम्
लुभ्	लोभ करना	लुब्ध	लुब्ध्वा	लोब्धुम्, लोभितुम्
वच्	बोलना	उक्त	उक्त्वा	वक्तुम्
वद्	बोलना	उदित	उदित्वा	वदितुम्
वप	बोना	उप्त	उप्त्वा	वप्तुम्
विश्	घुसना	विष्ट	विष्ट्वा	वेष्टुम्
शस्	कहना	शस्त	शस्त्वा, शसित्वा	शसितुम्
श्लिष्	आलिङ्गन करना	श्लिष्ट	श्लिष्ट्वा	श्लेष्टुम्
सह्	सहना	सोढ	सोढ्वा, सहित्वा	सोढुम्, सहितुम्
	छूना	स्पृष्ट	स्पृष्ट्वा	स्प्रष्टुम्
	मारना	हत	हत्वा	हन्तुम्
जि	जीतना	जित	जित्वा	जेतुम्
भिद्	चीरना	भिन्न	भित्त्वा	भेत्तुम्
भू	होना	भूत	भूत्वा	भवितुम्
छिद्	टुकड़े करना	छिन्न	छित्वा	छेत्तुम्
शक	सकना, समर्थ होना	शक्त	शक्त्वा	शक्तुम्
मुच्	छोड़ना	मुक्त	मुक्त्वा	मोक्तुम्
दुह्	दुहना	दुग्ध	दुग्ध्वा	दोग्धुम्

शब्दकोषः

अमङ्गलम् (न०)=अकल्याण, अशुभ। अर्थ (पु०) = द्रव्य, प्रयोजन।
आननम् (न०) = मुख।
कुञ्जर (पुं०) = हाथी।
दिनमणि (पु०)= सूर्य।
पङ्क (पु०) = कीचड़, पाप।
मृगया (स्त्री०) = शिकार।
विधि (पु०)= [illegible] तरकीब।
अभिषेक (पु०) = स्नान।
उपाय (पु०) [illegible] इलाज।

कुटज: (पु०) = झोपड़ी
देवायतनम् (न०) = मंदिर।
मूलम् (न०) = जड़।
कारागृहम् (न०) = बंदीखाना।
मद: (पु०) = अहङ्कार, नशा।
सारमेय (पु०) = कुत्ता।

विशेषणम् —

अखिल = सम्पूर्ण।
यज्ञिय = यज्ञसम्बन्धी।
सकल = सब।
अचिन्त्य = जिसका विचार न किया जा सके।
सम्यक् (क्रिया वि०) = अच्छी तरह।
छेय = नाश करने योग्य।
शोचनीय = शोक करने योग्य।
जेय = जीतने योग्य।

अव्ययम् :—

किमर्थम् = किस लिए।
प्रात: = प्रातःकाल, सुबह।
तूष्णीम् = चुपचाप, चुप।
सायम् = सायकाल, शाम।

धातुकोषः

खन् (१ गण, उभयपद) = खोदना।
धृ (१ गण, उ० प०) = पकड़ना।
वि + नी = शिक्षण देना, सिखाना।
प्रति + आप् (१ गण, आ०) = उत्तर देना।
प्रति + नि + वृत् (आ०) = लौटना।
उप + क्रम् = प्रारम्भ करना (उपक्रमते)
निर् + दिश् = बताना, दिखाना।
नि + धा (३ गण, उ०) = रखना।
उद् + धृ (धर्) (प०) = बचना, मुक्त करना, ऊँचा उठाना।
भज् (१ गण, उ० प०) = आश्रय पकड़ना, सहारा लेना, सेवन करना।
आ + रुह् (१ गण, प०) = चढ़ना।
परि + हृ (१ गण, उ०) = दूर करना, हटाना।
प्र + यत् (आ०) = कोशिश करना।

हिन्दी मे अनुवाद करो :—

जलं पातुं नदीं गच्छति।
अश्वमारोढुं मतिर्जाता।
सम्प्रदायमनुसृत्य ग्रन्थारम्भे देवतां वर्णयामि।
भटा योद्धुमागता।
ग्रामं गन्तुमिच्छामि।
मार्गार्धमतिक्रम्य श्राम्यति।
अस्तं गतो दिनमणिः।
छेयं पापम्, जेयं मनः।
जले निमग्नो देवदत्तः।
अचिन्त्यानप्यर्थान् विधिः प्रयच्छति।
गृहं प्रविश्य क मातेत्यपृच्छत्।
पङ्के पतितां धेनुमुद्धरति।

और इनमें विशेष्य के अनुसार लिङ्ग, वचन आदि होते हैं । अतएव इन प्रयोग तीनों लिङ्गों में होता है ।

पुल्लिङ्गम् :—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्र०	गच्छन्	गच्छन्तौ	गच्छन्तः
द्वि०	गच्छन्तम्	"	गच्छतः
तृ०	गच्छता	गच्छद्भ्याम्	गच्छद्भिः
च०	गच्छते	"	गच्छद्भ्यः
पं०	गच्छतः	"	"
ष०	"	गच्छतोः	गच्छताम्
स०	गच्छति	"	गच्छत्सु

नपुंसकलिङ्गम् :—

प्र०	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छन्ति
द्वि०	"	"	"

आगे पुँल्लिङ्ग के समान रूप होंगे ।

स्त्रीलिङ्गम् :—

१ गण –गच्छत् = गच्छन्ती । ६ गण –क्षिपत् = क्षिपती, क्षिपन्ती
४ गण –कुप्यत् = कुप्यन्ती । २ गण –स्नात् = स्नाती, स्नान्ती ।
१० गण =क्षालयत् = क्षालयन्ती । प्रेरणा-भावयत् = भावयन्ती ।

४—मृतु = शानच् वर्तमान । आत्मनेपदी धातुओं से शानच् प्रत्यय होकर वर्तमान, वर्धमान सेवमान, म्रियमान आदि रूप होते हैं। इनका भी प्रयोग तीनों लिङ्गों में होता है ।

शब्दकोषः

आपद् (स्त्री०) = विपत्ति । दृषद् (स्त्री०) = पत्थर ।
आयुष्मत् (वि०) = चिरजीवी । भवत् (सर्वनाम) = आप (आदरसूचक) ।
गुणवत् (वि०) = गुणी ।
जगत् (न०) = संसार । भूभृत् (पुं०) = राजा, पहाड़ ।

मरुत् (पु०) = वायु, देव ।
यशस्वत् (वि०) = प्रख्यात, कीर्तिमान् ।
वियत् (न०) = आकाश ।
सुहृद् (न०) = मित्र ।
अकाल (पु०) = न + काल । अनुपयुक्त समय, बेमौके ।
अन्तःकरणम् (न०) =हृदय, मन ।
उद्धत (वि०) =अहङ्कारी, उद्दण्ड ।
जीवितम् (न०)=जीवन ।
प्रवृत्तिः (स्त्री०)=अभिरुचि, मन का झुकाव ।
मृदु (वि०)=कोमल ।
धृन्तम् (न०) =डण्ठल ।
अत्यय. (पु०)=नाश ।
कुर्वत् = करने वाला, करता हुआ ।
जयत् = जीतने वाला, जीतता हुआ ।
वसत् = निवास करने वाला, निवास करता हुआ ।

मृद् (स्त्री०) = मिट्टी ।
वाच् (स्त्री०) वाणी ।
शरद् (स्त्री०)=शरद ऋतु ।
हुतभुज् (पु०)=अग्नि ।
निशा (स्त्री०) = रात ।
अधमर्ण (पु०) = कर्जदार ।
उत्तमर्ण. (पु०) = कर्ज देने वाला, धनी ।
चञ्चल (वि०) = चञ्चल ।
निषण्ण (वि०) = बैठा हुआ ।
बहुश (अ०) = प्राय , अक्सर ।
विकार' (पु०) = परिवर्तन, रूपा तर ।
विहित (वि०)=किया हुआ ।
सर्वथा (अ०) = सब प्रकार से ।
गच्छत् = जाने वाला, जाता हुआ ।
पश्यत्=देखने वाला, देखता हुआ ।
शासत् = शासन करने वाला, शासन करता हुआ ।

हिन्दी मे अनुवाद करो ।—

नृशसेभ्यो गुणवतामपि भय विद्यते ।
वत्से ! आयुष्मती भव ।
युधिष्ठिरो मूर्तिमान् धर्म इव ।
भवद्भिरादिष्टो भृत्यो नगरमगच्छत ।
दिनेषु गच्छत्सु देवदत्तो धनवानभवत् ।

बुद्धिमन्तो लोके यशस्वन्तो भवन्ति ।
जयतोऽरीन् मापेक्षस्व ।
पश्यतो गुरो शिष्येणाऽविनयः कृत ।
हुतभुजा दग्धमरण्यमपश्यद् युधिष्ठिर. ।
कवीनां वाक्षु माधुर्यमस्ति ।

और इनमें विशेष्य के अनुसार लिङ्ग, वचन आदि होते हैं। अतएव इ
प्रयोग तीनों लिङ्गों में होता है।

पुल्लिङ्गम् :—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्र०	गच्छन्	गच्छन्तौ	गच्छन्तः
द्वि०	गच्छन्तम्	"	गच्छतः
तृ०	गच्छता	गच्छद्भ्याम्	गच्छद्भिः
च०	गच्छते	"	गच्छद्भ्यः
प०	गच्छतः	"	"
ष०	"	गच्छतोः	गच्छताम्
स०	गच्छति	"	गच्छत्सु

नपुंसकलिङ्गम् :—

प्र०	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छन्ति
द्वि०	"	"	"

आगे पुँल्लिङ्ग के समान रूप होंगे।

स्त्रीलिङ्गम् :—

१ गण—गच्छत्=गच्छन्ती। ६ गण—क्षिपत्=क्षिपती, क्षिपन्ती
४ गण—कुप्यत्=कुप्यन्ती। २ गण—स्नात्=स्नाती, स्नान्ती।
१० गण—चालयत्=चालयन्ती। प्रेरणा—भावयत्=भावयन्ती।

४—शतृ=शानच् वर्तमान। आत्मनेपदी धातुओं से शानच् प्रत्यय होकर वर्तमान, वर्धमान सेवमान, विद्यमान आदि रूप होते हैं। इनका भी प्रयोग तीनों लिङ्गों में होता है।

शब्दकोष

आपद् (स्त्री०)=विपत्ति। दृषद् (स्त्री०)=पत्थर।
आयुष्मत् (वि०)=चिरजीवी। भवत् (सर्वनाम)=आप (आदरसूचक)।
गुणवत् (वि०)=गुणी। भूभृत् (पु०)=राजा, पहाड़।
जगत् (न०)=संसार।

मरुत् (पु०) = वायु, देव।
यशस्वत् (वि०) = प्रख्यात, कीर्तिमान्।
वियत् (न०) = आकाश।
सुहृद् (न०) = मित्र।
अकाल (पु०) = न + काल। अनुपयुक्त समय, बेमौके।
अन्तःकरणम् (न०) = हृदय, मन।
उद्धत (वि०) = अहङ्कारी, उद्दण्ड।
जीवितम् (न०) = जीवन।
प्रवृत्तिः (स्त्री०) = अभिरुचि, मन का झुकाव।
मृदु (वि०) = कोमल।
वृन्तम् (न०) = डण्ठल।
अत्यय. (पु०) = नाश।
कुर्वत् = करने वाला, करता हुआ।
जयत् = जीतने वाला, जीतता हुआ।
वसत् = निवास करने वाला, निवास करता हुआ।
मृद् (स्त्री०) = मिट्टी।
वाच् (स्त्री०) वाणी।
शरद् (स्त्री०) = शरद ऋतु।
हुतभुज् (पुं०) = अग्नि।
निशा (स्त्री०) = रात।
अधमर्ण (पु०) = कर्जदार।
उत्तमर्ण (पु०) = कर्ज देने वाला, धनी।
चञ्चल (वि०) = चञ्चल।
निषण्ण (वि०) = बैठा हुआ।
बहुश (अ०) = प्राय, अक्सर।
विकार (पु०) = परिवर्तन, रूपान्तर।
विहित (वि०) = किया हुआ।
सर्वथा (अ०) = सब प्रकार से।
गच्छत् = जाने वाला, जाता हुआ।
पश्यत् = देखने वाला, देखता हुआ।
शासत् = शासन करने वाला, शासन करता हुआ।

हिन्दी मे अनुवाद करो :—

नृशंसेभ्यो गुणवतामपि भय विद्यते।
वत्से! आयुष्मती भव।
युधिष्ठिरो मूर्तिमान् धर्म इव।
भवद्भिरादिष्टो भृत्यो नगरमगच्छत।
दिनेषु गच्छत्सु देवदत्तो धनवानभवत्।
बुद्धिमन्तो लोके यशस्वन्तो भवन्ति।
जयतोऽरीन् मापेक्षस्व।
पश्यतो गुरो: शिष्येणाऽविनयः कृत।
हुतभुजा दग्धमरण्यमपश्यद् युधिष्ठिर।
कवीनां वाक्षु माधुर्यमस्ति।

घटा मृदो विकारा अलङ्का-
राश्च सुवर्णस्य ।
द्रुपदि निषण्णो गुरु शिष्यान्
धर्ममुपादिशत् ।
अधमर्णा॰ परवन्तो भवन्ति ।
चन्द्रस्य प्रकाश॰ शरथाह्लादको
भवति ।
वियति मेघा वायुना निरस्ताः ।
भवन्तः पुत्रै॰ सहागच्छन्ति
श्रीमतो देवस्याज्ञा ।
प्राणानामत्ययेऽप्यसन्तः सद्भिर्
अभ्यर्थ्यन्ते ।
सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्त॰करणप्रवृत्तय॰।
अकालो नास्ति धर्मस्य जीविते
चञ्चले सति ।

संस्कृत में अनुवाद करो॰—

उद्योगी पुरुष पराधीन नहीं है ।
इन्द्र देवताओं के स्वामी हैं ।
विपत्ति में मनुष्य को (उसके) मित्र
छोड़ देते हैं ।
मुनि संसार को जगल के समान सम-
झते हैं ।
भगवान् मनु से ऐसा लिखा गया है ।
वन में निवास करने वाले राम और
लक्ष्मण से बहुत से राक्षसों का
विनाश किया गया ।
हवा डण्ठल से छूटे हुए फूल ले जाती है ।
दशरथ समृद्ध अयोध्या नगरी में
निवास करते थे ।
मुनि लोग वन में पत्थरों पर बैठते हैं ।
कृष्ण ने सारथियों को घोड़े हाँकते
हुए देखा ।
मैंने पाठशाला जाते हुए विद्यार्थियों
को देखा ।
बुद्धिमान् नवीनचन्द्र से पुस्तक लि[illegible]
जाती है ।
नारद आकाश से उतरे ।
स्वर्ग को जाने वाले (हमारे) आचार्य
ऐसा उपदेश दिया था ।
आपके दर्शन से मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।
सुख भोगने वालों की सुख की इच्छा
सुख के भोग से बारबार बढ़ती है
राजाओं की सभाओं में पण्डित पूजे
जाते हैं ।

—:o:—

एकोनविंशः पाठः

विधिः—

१ अपि नामानुरूपं वरं लभेय = क्या यह सम्भव है कि मैं योग्य वर प्राप्त कर सकूँ।
२ सम्पत्तौ न हृष्येत् विपत्तौ च न विषीदेत् प्राज्ञः = बुद्धिमान् पुरुष को सम्पत्ति में प्रसन्न और विपत्ति में दुःखी न होना चाहिए।
३ न्यायशास्त्रं शिक्षेवहि इतीच्छामि = मैं चाहता हूँ कि हम दोनों न्यायशास्त्र सीखें।
४ ऋषीन् मा कदाप्यवधीरये = तुम कभी भी ऋषियों का तिरस्कार मत करो।
५ प्रवासात्झटिति न प्रतिनिवर्तेथाश्चेन्म्रियेय = यदि तुम प्रवास से शीघ्र न लौटोगे तो मैं मर जाऊँगी।

१—विधि को प्रेरणा कहते हैं। इसका अर्थ 'चाहिए' ऐसा होता है। इसमें लिङ् लकार का प्रयोग होता है। कहीं कहीं सम्भावना के अर्थ में भी यह लकार प्रयुक्त होता है। जैसे —

महाराजस्य यशः पृथिव्यां प्रसरेत् = महाराज का यश पृथ्वी पर फैले।

भू (१ गणः, प०)

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमपुरुष	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
मध्यमपुरुष	भवेः	भवेतम्	भवेत
उत्तमपुरुष	भवेयम्	भवेव	भवेम

वृत् (१ गणः आ०)

प्रथमपुरुषः	वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्
मध्यमपुरुष	वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्
उत्तमपुरुष	वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि

शब्दकोषः

मलीमस (वि०)=(मलीमसा स्त्री०) मलिन, निन्दित।
पद्धति (स्त्री०) मार्ग, आचरण।
न्याय्य (वि०)=न्याययुक्त, उचित।
सुरभि (वि०) = सुगन्धित।
अर्थकृच्छ्र (पु० न०) = गरीबी धनसङ्कट।
अभिभूत (वि०)=पराजित, जो

वृत्तम् (न०) = आचरण। अहितम् (न०)=हानि, उपद्रव।
तृषित (वि०) = प्यासा। तमिस्रा (स्त्री०)=अंधेरी रात।
धीर (वि०) = पण्डित, धैर्यवान्। दारिद्रयम् (न०) =दरिद्रता, गरीबी।
परकीय (वि०) = पराया। न्यायसभा (स्त्री०) = कचहरी।
प्राप्त (वि०)= मिला हुआ। प्रतिदिनम् (अ०)=रोज।
विमार्ग. (पुं०)=कुमार्ग, दुराचरण। रज्जु (स्त्री०) = रस्सी।
हेतु (पु०) = कारण। विमुख (वि०)=पराङ्मुख। मुँह मोड़नेवाला।
समाज (पु०)=सभा, जनसमूह।
सुकृतम् (न०) = सत्कर्म, अच्छा व्यवहार। शोभन (वि०) = अच्छा।
साक्षिन् (पुं०) = गवाह।
अनुरञ्जनम् (न०) = प्रसन्न करना। सुचरितम् (न०) = सत्कर्म। अच्छा बर्ताव।
अपाय (पु०) = अपकार, हानि।
विस्मय (पु०) आश्चर्य। सुवृत्त (वि०) = सदाचारी।

धातुकोष :

अनु+इष् (इच्छ) = खोजना। नि+वृत् (आ०) = लौटना।
अव+धीर = तिरस्कार करना। अव+गाह् (१ गण, आ०)=नहाना।
अव+लम्ब (१ गण, आ०)=आश्रय लेना, स्वीकार करना। तप् (१ गण ,प०)=तपना,गरम होना।
द्रुह् (४ गण , प०)=द्रोह करना, द्वेष करना।
अधि+वस् = निवास करना, ऊपर बैठना। वि+स्मृ (स्मर्) = भूलना।

अव्ययम् :—

उत=अथवा। किम्=क्या। क्वचित्=कहीं। सर्वत=सब ओर से।
अपि नाम = सम्भावनाद्योतक। पुन =फिर, लेकिन, वाक्यशोभाजनक।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

स्त्रीभ्यो न द्रुह्येत्। विपदाभिभूतोऽपि नाहं धर्मं त्यजेयम्।
पुत्रा: सुचरितै पितरौ प्रीणयेयु। रज्जु सर्पं न मन्येध्वम्।
सुवृत्ताय शिष्याय गुरवो विद्या प्रयच्छन्ति। वत्सौ! मातुराशामनुरुध्येयाथाम्।
ईश्वरस्य पूजया शान्तिं विन्देवहि। प्रजानामनुरञ्जनाय राजानो यतेरन्

किं भो! नृत्य शिक्षेयोत गानम्?
धैर्यमवलम्ब्य शत्रुभि सह यूय युध्यध्वम्।
शिष्यस्याऽविनय गुरुर्न सहेत।
इच्छामि दुग्ध पिबेद् भवान्।
यद्यधर्मान्निवर्तेथा शोभन भवेत्।
न मुह्येदर्थकृच्छ्रेषु न च धर्म परित्यजेत्।
विषमप्यमृत कश्चिदूभवेदमृत वा विषमीश्वरेच्छया।
राजानो धर्मेण वसुधा शिष्यु'।
पण्डितानां समाजे अपण्डिता मौन भजेयु।
भूयाद्गतिर्मे भगवान् परेशः।
भूयात् पतिर्मे भगवान् मुकुन्द'।
साधुभ्य कदापि न द्रुह्येत्।
वर्धमान व्याधिं जयन्त शत्रु च नोपेक्षेत।
दुर्दशा गते नरि क्षुद्रोऽप्यहितमाचरेत्।
मलीमसा पद्धतिं कदापि नाथ लम्बेमहि।
शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः।
सर्वतो जयमन्विच्छेत् पुत्रा दिच्छेत् पराजयम्।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथ तिमस्त्रा।

सस्कृत मे अनुवाद करो :—

मनुष्य को मित्रों को न भूलना चाहिए।
हमें निष्कपट हृदय से ईश्वर की पूजा करनी चाहिए।
हमें वृक्ष की छाया म बैठना चाहिए।
किसी को दूसरे के धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए।
तुम दोनों को गुरु से न्याय पढ़ना चाहिए।
यदि हम अपने धर्म की रक्षा में मरेंगे तो हमें कीर्ति प्राप्त होगी।
तुम्हें उद्योग कभी न छोड़ना चाहिए।
राजा प्रजाओं को कष्टों से बचावें।
दोनों पुस्तकें दोनों हाथों से लावें।
तुझे दरिद्रों को धन देना चाहिए।
तुम अपने कर्तव्य से न चूको।
मनुष्य बिना कारण क्षोभ न करें।
कचहरी में गवाह सदा सत्य बोलें।
(वह अपने) शत्रुओं से युद्ध कर सके इसलिए सैनिकों को नगर के बाहर ले गया।
यदि म काशी गया तो पुस्तकें लाऊँगा।
तुम्हें अपने गुरु की आज्ञा माननी चाहिए।
म त्री के स्थान पर मुझे किसको नियुक्त करना चाहिए।
जो धर्म का आचरण नहीं करेगा उसका नाश होगा।

पुत्रकः (पु०) = प्यारा पुत्र।
भूतार्थः (पु०) = यथार्थ, सत्य।
लव (पु०) = अंश, कण।
वियोगः (पुं०) = विरह, जुदाई।
प्रतनु (वि०) = अल्प, सूक्ष्म, दे
मार्गदर्शक } मार्गोपदेष्टृ } (वि०) = र बतानेवाला।
शिवम् (न०) = कल्याण।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।
के आवां त्वां परित्रातुम्?
उत्ताम्यति मे हृदयं वत्सस्य दर्शनाय।
जनकः स्निह्यति युवयोः।
माऽस्मानवधीरय।
आर्ये! कथयामि ते भूतार्थम्।
मह्यं धनं न यच्छति।
त्वरते मम मनो गृहगमनाय।
क गता ते जननी?
एतस्य वृत्तान्तस्य श्रवणेन पर्याकुलं नो मनः।
कमपराधलवं मयि पश्यसि त्यजसि मानिनि! दासजनं यतः।
दीनेष्वस्मास्वप्येतादृशो भवतः स्नेहः।
कियती वेला सञ्जाता तव गवाक्
गच्छतां भवत्यौ, अहमप्यनु मागत एव।
वत्से! न ते मङ्गलकाले रोदि मुचितम्।
कुत्रास्ति मे पुत्रकः?
त्वया सहोपवनं गन्तुमिच्छामि
शिवो वः शिवाय भवतु।
बालकौ! युवयोः पिता काम्पि
महीं रक्षत्सु अस्मासु कुतो भयम्?
आवां किं गच्छेव?
तस्य पीडां परिहर्तुं, युष्माभिश्चि न्तित उपायो निष्फलोऽभवत्

संस्कृत में अनुवाद करो :—

तू बुद्धिमान् पुरुष है।
उस ग्राम को जाते हुए तुम्हारा मार्गदर्शक कौन था?
मेरी पुस्तक कहाँ है, यह मैंने तुम से पूछा।
तुमने उस समय जो किया वह मुझे याद है।
तेरे पराजित होने पर तेरे सिपाही लौटने वाले की धारा गये।
यहाँ जो हुआ सो हम से कहो।
हमारे विरह में शोक मत करो।
ईश्वर की कृपा से हम सब समुद्रों पार हुए।
सोमवार के दिन आने के लिए मुझ साथियों को आज्ञा दी गई थी
हम दोनों ने ऋषियों के अनेक काम देखे।

ससे यह खबर मुझसे मिली।

ने मुझसे बुद्धिमान् लोगों का मार्ग बताया।

क्या यह तुझे अविश्वास के योग्य समझता है?

उससे यह कहानी किसने कही?

ये फूल तुम दोनों के द्वारा लाये गये हैं।

वे दोनों सब मनुष्य की निन्दा करते हैं।

अपराध के बिना ही गुरु ने मुझे मारा।

उस कुत्ते को मारने में तुम से अनुचित काम किया गया है।

सर्वनाम (२)

अदस् = यह। इदम् = यह।

एतद् = यह। तद् = वह।

'इदम्' शब्द पास में स्थित किसी मनुष्य या वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है और 'एतद्' शब्द अत्यन्त समीपवर्ती मनुष्य या वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार दूरस्थित किसी मनुष्य या वस्तु के लिये 'अदस्' शब्द प्रयुक्त होता है। अप्रत्यक्ष मनुष्य या वस्तु के लिए तो 'तत्' शब्द का प्रयोग होता है। जैसे कहा गया है —

इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

अदस् (पु०)

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	,,	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	,,	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्	,,	,,
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	,,	अमीषु

अदस् (न०)

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्र० द्वि०	अदः	अमू	अमूनि

शेष रूप पुल्लिङ्ग के समान।

अदस् (स्त्री०)

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुव
प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमूम्	"	"
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभि
च०	अमुष्यै	"	अमूः
प०	अमुष्याः	"	"
ष०	"	अमुयो	अमूष
स०	अमुष्याम्	"	अमूषु

इदम् (पु०)

प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्	"	इमान्
तृ०	अनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्मात्	"	"
ष०	अस्य	अनयो	एषाम्
स०	अस्मिन्	"	एषु

इदम् (न०)

प्र० द्वि०	इदम्	इमे	इमा

शेष रूप पुल्लिङ्ग के समान।

इदम् (स्त्री०)

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम्	"	"
तृ०	अनया	आभ्याम्	आभि
च०	अस्यै	"	आभ्यः
प०	अस्याः	"	"

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
अस्या॰	अनयो॰	आसाम्
अस्याम्	"	आसु

एतद् (पु॰)

एष	एतौ	एते
एतम्	"	एतान्
एतेन	एताभ्याम्	एतैः
एतस्मै	"	एतेभ्यः
एतस्मात्	"	"
एतस्य	एतयो	एतेषाम्
एतस्मिन्	"	एतेषु

एतद् (न॰)

द्वि॰ एतत्	एते	एतानि

शेष रूप पुल्लिङ्ग के समान।

एतद् (स्त्री॰)

एषा	एते	एता॰
एताम्	"	"
एतया	एताभ्याम्	एताभि
एतस्यै	"	एताभ्यः
एतस्या॰	"	"
"	एतयो	एतासाम्
एतस्याम्	"	एतासु

तद् (पु॰)

	स॰	तौ	ते
॰	तम्	"	तान्
	तेन	ताभ्याम्	तै
॰	तस्मै	"	तेभ्य॰

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
पं०	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	,,	तेषु

तद् (न०)

प्र० द्वि०	तत्	ते	तानि

शेष रूप पुंलिङ्ग के समान ।

तद् (स्त्री)

प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	,,	,,
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	,,	ताभ्यः
पं०	तस्याः	,,	,,
ष०	,,	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	,,	तासु

शब्दकोषः

कदर्यः (पु०) = कन्जूस, क्षुद्र ।
कपीशः (पु०) = पक्षियों में श्रेष्ठ ।
गर्तः (पु०) = गड्ढा ।
छन्न (वि०) = ढका हुआ ।
दुःखित (वि०) = दुःखी, खिन्न
भीरु (वि०) = डरपोक ।
मधुकरः (पुं०) = भौंरा ।
वासः (पु०) = वासस्थान ।
विप्रिय (वि०) = अप्रिय ।
विप्रियम् (न०) = अपराध ।
उन्मुख (वि०) = उत्सुक ।
त्याज्य (वि०) = छोड़ने योग्य ।
द्रुतम् (क्रि० वि०) = शीघ्र
पुष्पधारिन् (वि०) = फूलदार, पुष्पित ।
प्रभव (पु०) = उत्पत्तिस्थान, निकास
भिक्षा (स्त्री०) = भीख ।
सङ्कटम् (न०) = विपदा ।
सङ्गम (पुं०) = संयोग, मिलना ।
सारङ्गः (पु०) = चातक, हरिण ।
साहसम् (न०) = हिम्मत, जोखिम का काम ।
स्वादु (वि०) = स्वादिष्ट, मीठा ।

रणरणक (पु०)=आतुरता उत्कण्ठा।
अभिजात (वि०)=उत्तम कुल में उत्पन्न।
ग्रह. (पुं०)=साथ।
व्यवसितम् (न०)=निश्चित।
दृश्य (वि०)=प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला।
अतिभूमि (स्त्री०)=अत्यधिक।

अव्ययम् :—

प्रति=अत्यन्त। अथवा=या, वा।
अद्य=आज। कृते=लिए।
ततः=तब, वहाँ से। तूर्णम्=जल्दी।
यतः=क्योंकि, जब से। नु=प्रश्नवाचक।
हला=सखी के लिए सम्बोधन (अ०)। ह्यः=बीता हुआ कल।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

अमी अश्वास्तूर्णं धावन्ति।
अतिभूमिं गतो रणरणकोऽस्याः ?
हला ! अमू सख्यौ क्व नु भवेयु ।
अमूनि नलिनानि सर्वतः प्रकाशन्ते। लक्ष्मण ! पश्यामूनि।
अमु प्रेक्षितु त्वरतेऽस्य हृदयमद्य।
वत्स ! विरमाऽस्मात्साहसात्।
अस्मै विदुषे छात्राय पारितोषिकं प्रयच्छ।
अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवः।
अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वासः।
पुर्यां किलास्यां किल कालिदासो नाम्नाऽभवद्यो न्यवसत् कवीशः।
एभिर्वचोभिः सान्त्वय मे दुःखित पितरम्।
अमूषां ललनानां मध्ये कासौ रूपे रतिमप्यतिक्राम्यति ?
अमूषां कन्यानां विवाहा ह्यः समपद्यन्त।
अभिजातमनुष्य वचनम्। अथवा चन्द्रादमृतमिति किमत्र चित्रम् ?
इदमासनमलङ्क्रियतां भवता।
अमू तौ तरू, यौ ह्योऽपश्यम्।
अनयोः कन्ययोः सङ्गतं मे रोचते।
हंस ! प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता।
अगच्छदमुया वीथ्या दास्यमुद्रुतमानयत्।
कृतं किमेभिस्तव विप्रियं यदनिष्टमेषामसि कर्तुमुद्यतः।

कथं पुनः सर्वे राममेव वर्णयन्ति ?

अस्मिँल्लोके यत्क्रियते तस्य फ[ल]मुष्मिँल्लोकेऽनुभूयते।

सीते! पुत्राविमौ ते।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

यह मेरी पुस्तक है।
ये मनुष्य अपने राजा की विजय पर प्रसन्न होते हैं।
ये कन्यायें नृत्य सीखती हैं।
इन ग्रामों में बहुत से धनवान् हैं।
इन नदियों के निकास हिमालय में हैं।
मैंने उस सिपाही को युद्धस्थल से भागते हुए देखा।
मैं कृपण से दान की आशा नहीं करता।
ये (दोनों) कन्यायें भी विवाह में देने योग्य हैं।
जो ये (येऽमी) प्रसिद्ध चोर हैं, वे राजा के मनुष्यों से पकड़े गये।
तुम सबको इस पुरुष का आदर करना चाहिए क्योंकि यह बड़ा विद्वान् है।
मैं इन कानों से नहीं सुनता हूँ।

इस वृक्ष पर एक मोर है।
इस यमुना में आजकल पानी कम है।
इन पर्वतों से बहुत पत्थर गिरे हैं।
मैंने इस छड़ी से चोर को पीटा।
मैंने एक व्याघ्र को उस पर्वत की चो[टी] से उतरते हुए देखा।
पथिक उस मार्ग से गया।
इन (दोनों) गड्ढों को मिट्टी से भर दो।
राजाका महल इस नदीसे दो कोस दूर है।
इन (दोनों) नदियों का सङ्गम पवित्र है।
भाई! (वत्स) तपोवन में यह कौन जा रहा है?
मुझे जो धन मिले वह मैं गरीबों को दे दूँ।
इस नदी में बहुत पानी है।
यह उसका आदमी पानी पीना चाहता है।
यति लोग संसार छोड़ जंगल में रहते हैं।

शुद्ध करो :—

अय गृहम्। अस्मिन नगर्याम्। वस्मै बालिकायै। सर्वाणां पर्वतानां हिमालय श्रेष्ठः। सर्वेषां नदीनां गङ्गा श्रेष्ठा। इमं स्थानं गच्छ। इ[...] वृक्षः। एतद् वृक्षः। अहमिदं गृहे वसामि। अस्मिन् नगर्यां न इमं स्थाने नाविष्ठत। इय बालको मम शिष्यः। एष बालिका बुद्धिमती। अस्मात् तटिन्या जल निर्मलम्। तां जलमानय। इन्द्रः पूर्वाया दिशोऽधिप। अन्यं गृहम्। ते असौ वने तिष्ठति। अय संसारस्य नीतिः। राम पूर्वस्माद् दिश आगत। अयं पवित्रे आश्रमे एका विदुषी नारी अस्ति।

— • —

द्वात्रिंशः पाठः

संख्यावाचकाः शब्दाः —

एको बालकः = एक बालक । द्वौ बालकौ = दो बालक ।
एका बालिका = एक लड़की । द्वे बालिके = दो लड़कियाँ ।
एकं फलम् = एक फल । द्वे फले = दो फल ।
त्रयो वेदाः = तीन वेद । चत्वारः छात्राः = चार विद्यार्थी ।
तिस्रो विद्याः = तीन विद्याएँ । चतस्रो गावः = चार गायें ।
त्रीणि मित्राणि = तीन मित्र । चत्वारि कलत्राणि = चार पत्नियाँ ।
पञ्च मनुष्याः = पाँच मनुष्य । पञ्च गावः = पाँच गायें ।
पञ्चफलानि = पाँच फल ।

संस्कृत में १ से १८ तक संख्यावाचक शब्द नीचे लिखे अनुसार :—

एक = एक ।	द्वि = दो	त्रि = तीन ।
चतुर् = चार ।	पञ्चन् = पाँच ।	षष् = छः ।
सप्तन् = सात	अष्टन् = आठ ।	नवन् = नौ ।
दशन् = दस ।	एकादशन् = ग्यारह ।	द्वादशन् = बारह ।
त्रयोदशन् = तेरह	चतुर्दशन् = चौदह ।	पञ्चदशन् = पन्द्रह ।
षोडशन् = सोलह ।	सप्तदशन् = सत्रह ।	अष्टादशन् = अठारह ।

१—संख्यावाचक शब्द कहीं 'विशेषण' और कहीं 'विशेष्य' होते हैं । एक से 'अष्टादशन्' तक सब संख्यावाचक विशेषण ही होते हैं । ११ से परार्ध तक की संख्यायें कभी विशेष्य और कभी विशेषणभाव से प्रयुक्त होती हैं ।

१—एक से चार (चतुर्) तक की संख्याओं का लिङ्ग अपने विशेष्य के अनुसार होता है अर्थात् अपने विशेष्य के अनुसार उनका लिङ्ग बदलता रहता है । पञ्चन् से आगे संख्यावाचक शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान ही होते हैं ।

१६ से आगे संख्यावाचक शब्द —

ऊनविंशतिः	१६	षष्टिः	६०
विंशतिः	२०	सप्तति	७०
त्रिंशत्	३०	अशीति	८०

चत्वारिंशत्	४०	नवतिः	९०
पञ्चाशत्	५०	शतम्	१००

३—'विंशति' आदि शब्दों के पूर्व 'एक, द्वि' आदि शब्द जोड़ने से २१, २२ आदि शब्दों के वाचक बन जाते हैं—एकविंशतिः २१, द्वाविंशतिः २२, त्रयोविंशति २३। परन्तु इस प्रकार २९, ३९ आदि जो संख्या से युक्त शब्द 'एकोन' शब्द अथवा 'ऊन' शब्द जोड़ने से बनते हैं—एकोनत्रिंशत्, एकोनचत्वारिंशत् अथवा 'ऊनत्रिंशत्', 'ऊनचत्वारिंशत् आदि। इस प्रकार के शब्द बनने में नकारान्त शब्दों के नकार का लोप, द्वि के द्वा, त्रि को त्रय. और अष्टन् को अष्टा हो जाता है।

४—'विंशति' आदि शब्द सदा स्त्रीलिङ्ग तथा एकवचन में ही प्रयुक्त होता है। जिन शब्दों के ये विशेषण होते हैं वे भले ही किसी भी लिङ्ग और किसी भी वचन के हों। जैसे—'विंशतिर्ब्राह्मणाः'—२० ब्राह्मण।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

दशरथस्य तिस्रो भार्याः कौसल्या सुमित्रा कैकयी च।
भ्रमरशब्दे द्वौ रेफौ स्तस्तस्माद् द्विरेफ इत्युच्यते।
न्यायो वैशेषिकं साङ्ख्यं योगो मीमांसा वेदान्त इति षड् दर्शनानि।
अमीषां चतुर्णां फलानां मध्ये यत्ते तद् गृह्यताम्।
तिसृषु कन्यास्वियं लावण्ये श्रेष्ठा।
अष्टाभिस्तनुभिः प्रपन्न शिवोऽवतात्।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
संसारविषवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
काव्यामृतरसास्वादः सङ्गमः सुजनैः सह।
पञ्चाशतं ब्राह्मणेभ्यः प्रत्यहं कृष्णवर्मोऽन्नं यच्छति।
गुरोः परिचर्यां कुर्वतस्तस्य द्विचत्वारिंशदहानि व्यतीयुः।
चतस्रो विद्याः चतुःषष्टि कलाश्च चन्द्रापीडोऽशिक्षत।
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्ता सो अस्य।
भाद्रपदस्य कृष्णपक्षेऽष्टम्यां तिथौ देवकी कृष्णं सुषुवे।
त्रयस्त्रिंशद् देवा अष्टौ वसवः एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः।

संस्कृत में अनुवाद करो —

सूर्य के सात घोड़े हैं।
सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण हैं।
शिव के तीन नेत्र हैं।
प्रारम्भ में केवल चार वर्ण थे।
राम ने २१ सुन्दर फल लिये हैं।
वह एक वर्ष में १०० पुस्तकें नहीं पढ़ सकता।
इन्द्र ने १०० यज्ञ किये थे।
मनुस्मृति में १२ अध्याय हैं।
राम ने रावण के १० सिर काट दिये।
हिन्दुओं का विश्वास है कि ८ दिशाओं के पृथक् पृथक् ८ स्वामी हैं।
डाक्टर ने ४९ दिन तक इस दवा को लेने के लिये मुझे आदेश किया है।
राम पाँच महीनों में इस पुस्तक को पढ़ सकता है (पठेत्)।
राम २५ लड़कों के साथ खेला करता है।
उस समय ९६ मनुष्यों की परीक्षा की गई जिनमें से ५४ मनुष्य अच्छे वैयाकरण सिद्ध हुए।
पण्डित लोग कहते हैं कि १८ पुराण और २४ स्मृतियाँ हैं।
आजकल यजुर्वेद की २ शाखाएँ मिलती हैं।
पाँच पाण्डवों से सब शत्रु मारे गये।
उसने ४ विद्याओं, ६ शास्त्रों और ६४ कलाओं में योग्यता प्राप्त की।
महाभारत के १८ पर्वों में तीसरा (तृतीय) सबसे अच्छा है क्योंकि इसमें अनेक रोचक कथायें हैं।
मैंने रघुवंश के १७ सर्ग, कुमारसम्भव के ७ सर्ग, ९ नाटक और महाभाष्य के ८६ पृष्ठ पढ़े हैं।

त्रयोविंश पाठ

कविषु कालिदासः प्रथमः =कवियों में कालिदास पहला है।
भ्रातृषु भरतो द्वितीयः =भाइयों में भरत द्वितीय है।
दशरथस्य भार्यासु कौसल्या प्रथमा सुमित्रा द्वितीया कैकयी च तृतीया= दशरथकी रानियों में कौसल्या पहली, सुमित्रा दूसरी और कैकयी तीसरी थी।
देवदत्तो दिवा सकृद् भुङ्क्ते=देवदत्त दिन में एक बार खाता है।
स मासस्य द्विः त्रिर्वा अधीते=वह महीने में दो या तीन बार पढ़ता है।
सहस्रधा विदीर्णं तस्य हृदयम्=उसके हृदय के सौ टुकड़े हो गये।
षोडशवर्षीयो हरिर्वृन्दावनं गतवान्=सोलहवर्ष का हरि वृन्दावन गया था।
सप्ततिवार्षिकः प्राणान् तत्याज=७० वर्ष का वह मरा।

१—ऊपर लिखे वाक्यों से प्रतीत होता है कि संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग पहला, दूसरा, तीसरा आदि भाव प्रकट करने के लिए भी होता है, परन्तु उस समय उनके रूपों में कुछ भेद हो जाता है। इस प्रकार के संख्यावाचक शब्दों को पूरणी संख्या अथवा पूरणार्थक संख्या कहते हैं। ये पूरणार्थक संख्यावाचक शब्द विशेषणरूप से प्रयुक्त होते हैं अतः इनके लिङ्ग और वचन विशेष्य के अनुसार होते हैं।

पूरणार्थक संख्या नीचे लिखी जाती है :—

पु०	स्त्री०	नपुं०
आदिमः	आदिमा	आदिमम्
प्रथमः	प्रथमा	प्रथमम्
अग्रिमः	अग्रिमा	अग्रिमम्
द्वितीयः	द्वितीया	द्वितीयम्
तृतीयः	तृतीया	तृतीयम्
चतुर्थः—तुरीयः	चतुर्थी	चतुर्थम्
पञ्चमः	पञ्चमी	पञ्चमम्
षष्ठः	षष्ठी	षष्ठम्
सप्तमः	सप्तमी	सप्तमम्
अष्टमः	अष्टमी	अष्टमम्
नवमः	नवमी	नवमम्
दशमः	दशमी	दशमम्

आगे 'अष्टादश' तक इसी प्रकार शब्द बनेंगे।

विंशतितमः	विंशतितमी	विंशतितमम्
विंशः	विंशी	विंशम्
एकविंशतितमः	एकविंशतितमी	एकविंशतितमम्
एकविंशः	एकविंशी	एकविंशम्
त्रिंशत्तमः	त्रिंशत्तमी	त्रिंशत्तमम्
त्रिंशः	त्रिंशी	त्रिंशम्

शेष संख्यावाचक शब्द भी इसी प्रकार बन जाते हैं।

इनमें से द्वितीय तथा तृतीय शब्द सर्वनाम हैं। उनके रूप सर्व शब्द के

समान होंगे, परन्तु चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी एकवचन में राम शब्द के समान भी होंगे।

'वार' अर्थ में नीचे लिखे अनुसार संख्यावाचक शब्द बनते हैं —

सकृत् = एक बार। द्विः = दो बार त्रिः = तीन बार।

चतुः = चार बार पञ्चकृत्व = पाँच बार। षट्कृत्व = छ बार।

आगे संख्यावाचक शब्द में 'कृत्व' जोड़ देने से 'बार' वाचक शब्द बन जाते हैं। इस प्रकार के शब्द बनाने में नकारान्त शब्दों के नकार का लोप हो जाता है।

३—आयु का परिमाण सूचित करने के लिए संख्यावाचक शब्द के आगे वर्षीय, वार्षिक, वर्षीण और वर्ष शब्द का प्रयोग होता है।

४—लगभग दो वर्ष का, लगभग तीन वर्ष का इस प्रकार के वाक्यों का अनुवाद करने के लिए संख्यावाचक शब्द से वर्षदेशीय शब्द का प्रयोग करते हैं। त्रिवर्षदेशीयः सप्तवर्षदेशीय.=लगभग तीनवर्षका, लगभग सात वर्ष का।

हिन्दी में अनुवाद करो —

अयि वत्स! उषित त्वया प्रथम आश्रमे द्वितीयमध्यासितुमिदानीं समयः।

त्रिःसप्तकृत्व परशुरामः पृथिवीमक्षत्रियामकरोत्।

सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयात्।

> गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
> गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।
> त्रिराचामेदप पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्।
> अनारम्भो हि कार्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम्।
> आरब्धस्यान्तगमनं द्वितीयं बुद्धिलक्षणम्॥

एकादश्यां तिथौ लोकाः फलाहारं कुर्वन्ति।

अत्र रथ्यायां मम गृहं पञ्चविंशतितमस्ति।

संस्कृत में अनुवाद करो —

रघुवंश में दस से अधिक सर्ग हैं। मैंने उससे पाँचवार फल गिनने को कहा।

अगली आश्विन की अष्टमी तिथि को दुर्गा पूजा उत्सव होगा। महीने की २७ वीं तारीख को पण्डितों की एक सभा हुई।

आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को दक्षिण में सब मनुष्य एक दूसरे को शमीपत्र देते हैं।

मैंने उसे १५ वीं तारीख के बजाय १३ वीं तारीख को ११५ दिये।

राम का विवाह संस्कार पिछली २२ तारीख को समाप्त हो गया।

मैंने उससे तीन बार अलग होने के कहा परन्तु जब उसने नहीं म॰ तब मैंने उसे एक बेंत मारा।

आशा है कि वह फिर यहाँ तीसरे दि॰ आ जायगा।

उसके पिता का श्राद्ध १३ वीं तिथि होगा।

शुद्ध करो :—

तस्य चत्वारिंशत पुस्तक विद्यते। मम सुन्दर शत वस्त्राणि। भवान् इमान् सप्ततीन् अजान् आनय। अशीते पुनस्य नाः। एकपञ्चाशत मित्रा मम। अह तस्य शत सङ्कोत श्रुतवान्। रावण॰ दश पुत्र आसीत्। अस्मिन् सरसे सहस्र पद्मानि। इन्द्रस्य सहस्र चक्षुरासीत्। रामः अष्टानि फलानि भक्षयति। स अष्टादशैः बालै॰ सह क्रीडति। त्रयोदशेभ्यो बालकेभ्य त्रयोदशान् ग्रन्थान् ददाति। स॰ सहस्र मुद्राम् आनयति। लघाय बालकाय पुरस्कार ददाति।

चतुर्विंशः पाठः

विशेषणों का तर तम भाव —

देवदत्तात् यज्ञदत्त साधुतर = देवदत्त से यज्ञदत्त अच्छा है।

देवदत्तयज्ञदत्तयो यज्ञदत्त साधुतर = देवदत्त और यज्ञदत्त में यज्ञ॰ अच्छा है।

सर्वेषु मनुष्येषु कृष्ण साधुतमः = सब मनुष्यों में कृष्ण अच्छा है।

जब कुछ व्यक्तियों अथवा वस्तुओं की परस्पर तुलना की जाती है तब यदि यह तुलना दो वस्तुओं में की गई हो और उनमें से एक की श्रेष्ठता अथवा हीनता प्रदर्शित करनी हो तो विशेषण शब्द के अन्त में 'तर' अथवा 'ईयस्' प्रत्यय जोड़ा जाता है। और यदि यह तुलना दो से अधिक व्यक्तियों या वस्तुओं में की जाय तो उनमें से किसी की श्रेष्ठता या हीनता प्रदर्शित करने के लिये 'तम' अथवा 'इष्ठ' प्रत्यय जोड़ा जाता है। इस प्रकार बने हुए विशेषणों के लिंग और वचन विशेष्यानुसार होते हैं।

कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं—

शब्द	अर्थ	अधिकतावाचकरूप	
साधु	अच्छा	साधुतर	साधुतमः
दुष्ट	बुरा	दुष्टतर	दुष्टतमः
पटुः	चतुर चालाक	पटुतर, पटीयान्	पटुतमः, पटिष्ठ
लघु	छोटा हल्का	लघुतर, लघीयान्	लघुतम, लघिष्ठ
गुरु	बड़ा, भारी	गुरुतर, गरीयान्	गुरुतम, गरिष्ठ
प्रिय	प्यारा	प्रियतम, प्रेयान्	प्रियतम, प्रेष्ठ
दीर्घः	लम्बा	दीर्घतर, द्राघीयान्	दीर्घतम, द्राघिष्ठ
मृदु	कोमल	मृदुतर, म्रदीयान्	मृदुतम, म्रदिष्ठ
कृश	दुर्बल	कृशतर, क्रशीयान्	कृशतम, क्रशिष्ठ
प्रशस्य	प्रशंसा के योग्य	श्रेयान्, ज्यायान्	श्रेष्ठ, ज्येष्ठः
वृद्ध	बूढ़ा	वर्षीयान् ज्यायान्	वर्षिष्ठ, ज्येष्ठ
अल्पः	थोड़ा	अल्पतर, कनीयान् अल्पीयान्	अल्पतम, कनिष्ठ, अल्पिष्ठ
युवा	जवान	कनीयान्, यवीयान् युवतर	कनिष्ठ, यविष्ठः युवतम
स्थूल	मोटा	स्थूलतर, स्थवीयान्	स्थूलतम, स्थविष्ठ
दूर	दूर	दूरतर, दवीयान्	दूरतम, दविष्ठ
बहुः	बहुत	बहुतर, भूयान्	बहुतमः, भूयिष्ठ
ह्रस्व	छोटा	ह्रस्वतर, ह्रसीयान्	ह्रस्वतम, ह्रसिष्ठ

हिन्दी में अनुवाद करो —

अयमनयोः लघीयान् (लघुतर)।

भीमो दुर्योधनात् बलीयान् (बलितर)।

सर्वेभ्य पाण्डवेभ्य (सर्वेषु पाण्डवेषु) अर्जुनः श्रेष्ठ, (प्रशस्यतम) आसीत्।

कृष्णस्य सुभद्रा यवीयसी स्वसा।

सर्वेषु कुसुमेषु शिरीषकुसुम म्रदिष्ठम्।

निःश्रेयसाय कर्मपथाज्ज्ञानमार्गः साधीयान्। श्रेष्ठस्तु सर्वेषां भक्तिमार्गः।

धार्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवाः कृष्णसाहाय्याद् बलीयांसः किन्तु … योधसमाजो गरीयान् ।

विष्णुशर्मण एकपञ्चाशत्पुत्रा आसन् । तेषां ये मध्यमाद् देवदत्ता ज्यायांसः पञ्चविंशतिस्ते कनीयोभिः पञ्चविंशत्या कलहं चक्रुः ।

सर्वासु नदीषु भागीरथी द्राघिष्ठा विस्तारे वरिष्ठा च । तस्… सलिलं यमुनायाः शुचितरम् । पर्वतेषु हिमालयः प्रथिष्ठः ।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।

प्रियतमस्य पुण्डरीकस्य मरणेन सशोकया महाश्वेतया विरक्त… विषयाः, दूरीकृतो बान्धवजनश्चाङ्गीकृतमरण्येऽवस्थानम् ।

एकः पुरुषः प्रियतमायाः प्रासादस्योपरितनीं भूमिं प्रवेष्टुमिच्छु… वातायनादधोऽवलम्बमानमहिं रज्जूकृत्यारोह ।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

यह विद्यार्थी उस विद्यार्थी से छोटा नहीं है ।

सब जन्तुओं में हाथी बड़ा होता है ।

अच्छे मनुष्य सुखी होते हैं और वे आदर के पात्र हैं ।

सब देवताओं में इन्द्र तेजस्वी और बलवान् था इसलिए वह राजा बनाया गया ।

इस गाड़ी में जुते हुए बैल अन्य बैलों से मोटे (पीवर) हैं ।

दशरथ की तीनों पत्नियों में कौशल्या सब से बड़ी (वृद्ध) और कैकयी सबसे छोटी (युवन्) थी ।

अधिक और कम बराबर हैं, यह बात असत्य है ।

श्रीमन् ! तुझे तो धन से धर्म ही प्यारा है ।

दौड़ने वाले सब जानवरों में घोड़ा तेज (आशु) है ।

सत्यभामा की अपेक्षा रुक्मिणी कृष्ण को अधिक प्रिय थी ।

जब मनुष्य का भाग्य प्रतिकूल होता है तब उसके घर के लोग भी शत्रु (विपक्ष) हो जाते हैं ।

उस समय में दमयन्ती सब स्त्रियों से सुन्दर (चारु, सुन्दरी) थी और अपने पति पर अत्यन्त अनुरक्त थी ।

शुद्ध करो :—

एष सर्वोपरिष्ठः । एषा तासु बलीयसी । रामस्तेषां बलवत्तरः ।
रामो भरतात् बलिष्ठः । गिरिषु सुमेरुर्महत्तरः । रामस्तेषां बुद्धिमत्तरः ।
भीमो भ्रातॄणां बलवत्तरः । कृष्णो यमदेवात् बुद्धिमत्तमः ।

पञ्चविंशः पाठः

प्रयोजक (णिजन्त) :—

१ स रामं पश्यति = वह राम को देखता है।
स तं रामं दर्शयति = वह उसे राम को दिखाता है।

२ स ग्रामं गच्छति = वह ग्राम को जाता है।
हरिस्तं ग्रामं गमयति = हरि उसे ग्राम को भेजता है।

३ अहं पठामि = मैं पढ़ता हूँ।
गुरुः मां पाठयति = गुरु मुझे पढ़ाता है।

४ स आस्ते = वह बैठता है।
यज्ञदत्तस्तम् आसयति-ते = यज्ञदत्त उसे बैठाता है।

५ भृत्यः पचति = नौकर पकाता है।
स भृत्येन पाचयति = वह नौकर से पकवाता है।

इन वाक्यों को देखने से प्रतीत होता है —प्रथम वाक्य से क्रिया के करने ले का बोध होता है और दूसरे वाक्य से क्रिया के करने वाले को उस क्रिया में ा (प्रेरणा) करने वाले का बोध होता है। यह दूसरा वाक्य ही प्रेरणार्थक जिन्त कहलाता है।

—प्रेरणार्थक क्रिया के रूप दशम गण की क्रियाओं के समान होते हैं।

—णिजन्त (प्रेरणार्थक) क्रियाओं में प्रायः आत्मनेपद तथा परस्मैपद दोनों होते हैं। जैसे—स पाठयति पाठयते वा।

—अकर्मक धातुएँ प्रेरणार्थक (णिजन्त) होने पर सकर्मक हो जाती हैं। 'स आस्ते' यहाँ 'आस्' धातु अकर्मक है परन्तु 'स तम् आसयति' इस प्रेरणार्थक वाक्य में यह सकर्मक हो गई है। और प्रथम क्रिया 'आस्ते' का कर्ता 'सः' यहाँ (णिजन्त में) कर्म हो गया है। अतः यह ध्यान में रखना चाहिए कि अण्यन्त (णिच् होने से पूर्व) क्रिया का कर्ता ण्यन्त (प्रेरणार्थक) वाक्य में कर्म हो जाता है।

—'स रामं पश्यति' यहाँ 'पश्यति' क्रिया सकर्मक है जिसका कर्म, 'रामम्' है। यही वाक्य जब प्रेरणार्थक बनाया जाता है तब 'स तं रामं दर्शयति' यह होता है। यहाँ दो कर्म 'तं, रामं' दृष्टिगोचर हो रहे हैं। एक तो वही है जो प्रथम वाक्य में भी कर्म था और दूसरा वह है जो प्रथम वाक्य में

कर्ता था। अब साधारणतया यह ध्यान में रखना चाहिए कि —इनमें धातुएं प्रेरणार्थक क्रिया होने पर द्विकर्मक हो जाती हैं।

५—अण्यन्त क्रिया के कर्ता को प्रयोज्य कर्ता तथा ण्यन्त क्रिया के कर्ता को प्रयोजक कर्ता कहते हैं।

६—अकर्मक, ज्ञानार्थक, गत्यर्थक, भक्षणार्थक, शब्दकर्मक और दृश् इन धातुओं का प्रयोजक रूप बनाने पर मूल क्रिया (अण्यन्त) का कर्ता द्वितीया विभक्त्यन्त प्रयुक्त होता है। हृ तथा कृ धातुओं में यह नियम विकल्प से लगता है और नी तथा वह् धातु में बिल्कुल नहीं लगता। इनसे भिन्न धातुओं का प्रयोजक रूप बनाने पर मूल कर्ता (प्रयोज्य कर्ता) में तृतीया विभक्ति होती है।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

पुष्यमित्रो यजते याजकास्तं याजयन्ति।

कृष्णवर्मा पुत्रेण प्रत्यहं शतं गा दापयति।

जानकीं रथमारोप्य जाह्नवीतीरमासाद्य रामाज्ञापितो लक्ष्मणस्तां विजहौ।

असुरस्य प्रचण्डेन तपसा प्रसन्नो भगवान् शङ्करः स्वीयं रूपं तमदर्शयत्।

नगेन्द्रसक्तां दृष्टिं पार्श्वे कस्यापि क्रन्दितमाकर्ण्य राजा न्यवर्तयत्।

अस्मिँल्लोकेऽनुष्ठितो धर्मस्तस्य कर्तारं स्वर्गलोकं गमयति।

ग्रीष्मकाले घर्मोऽङ्गानि ग्लपयति, स्वेदं प्रवर्तयति तृष्णां च परिवर्धयति।

बहिर्द्वारि प्रवृत्तमृषिकुमारकं प्रवेशयितुं प्रतीहारीमाज्ञापयद्-राजा।

देवदत्तो बलीवर्दं सस्यं भक्षयति।

कुसुमपुरनिवासिनः गृहे शत्रुणा पातितमग्निं कृष्णवर्मा निरवापयत्।

सांसारिका माया जनो रमयन्ति।

संस्कृत में अनुवाद करो —

माधोराव के दुष्ट कर्म हम को लज्जित करते हैं।

इन्द्र ने अपने रथ पर मातलि द्वारा अर्जुन को स्वर्ग पहुंचाया (आ + नी)।

गुरु ने उसे आज्ञा दी कि वह प्रतिदिन उसकी गौ को चराये (चर्) और पानी पिलाये।

पहले वह अपनी प्रातःकाल की सन्ध्या समाप्त करता फिर १६ ब्राह्मणों को भोजन कराता और बाद में स्वयं खाता था।

पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र जहां युद्ध करते थे वहां जो जो होता था वह सब सञ्जय धृतराष्ट्र को सुनाता था।

दुर्भाग्यवश कभी कभी भाई एवं मित्रों को आपस में लड़वाता और एक दूसरे का सिर कटवाता है।

पिता को अपनी पुत्री का विवाह, सज्जन, कुलीन और युवक पुरुष से करना चाहिए। (परि+नी, वि+वह , उद् + वह्)।

ये श्लोक जो इस लड़के ने गाये वे मुझे उस समय की याद दिलाते हैं जब मैं अपनी प्रिया तथा भाई लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण पर्वत पर रहता था।

राम गोविन्द से धन चुरवाता है।

राजा गरीबों पर दया दिखाता है।

ग्वाला धेनु को घास खिलाता है।

लक्ष्मण सीता को रथपर चढ़ा कर गङ्गापार ले गया।

राजा ब्राह्मणों से धन ग्रहण करवाता है (प्रति + ग्रह)

वसिष्ठ दशरथ को यज्ञ करवाता है (यज्)।

शब्दकोषः

किन्नर (पु०) = देवयोनिविशेष। घर्म (पु०) = पसीना, घाम।
क्रन्दितम् (न०) = चिल्लाहट। तृष्णा (स्त्री०) = प्यास।
जाह्नवी (स्त्री०) = गङ्गा। पुष्यमित्र (स्त्री०) = एक राजा का नाम।
नगेन्द्र. (पु०) = पर्वतराज हिमालय।
प्रतीहारी (स्त्री०) = द्वारपालिका। स्वेद. (पु०) = पसीना।
काले काले, प्रसङ्गवशात्, कदा = कभी कभी।
विद्वान् (पु०) = कृतविद्य, संस्कृतचित्त, सुविनीत।
प्रस्रवण (पुं०) = एक पर्वत का नाम, (न०) सोता।

कर्ता था। अत साधारणतया यह ध्यान में रखना चाहिए कि—कर्म धातुएं प्रेरणार्थक क्रिया होने पर द्विकर्मक हो जाती हैं।

५—अण्यन्त क्रिया के कर्ता को प्रयोज्य कर्ता तथा ण्यन्त क्रिया के कर्ता को प्रयोजक कर्ता कहते हैं।

६—अकर्मक, ज्ञानार्थक, गत्यर्थक, भक्षणार्थक, शब्दकर्मक और दृश इन धातुओं का प्रयोजक रूप बनाने पर मूल क्रिया (अण्यन्त) का कर्ता द्वितीया विभक्त्यन्त प्रयुक्त होता है। हृ तथा कृ धातुओं में यह नियम विकल्प से लगता है और नी तथा वह धातु में बिल्कुल नहीं लगता इनसे भिन्न धातुओं का प्रयोजक रूप बनाने पर मूल कर्ता (प्रयोज्य कर्ता) में तृतीया विभक्ति होती है।

हिन्दी में अनुवाद करो :—

पुष्यमित्रो यजते याजकास्त याजयन्ति।

कृष्णवर्मा पुत्रेण प्रत्यहं शतं गा दापयति।

जानकीं रथमारोप्य जाह्नवीतीरमासाद्य रामाज्ञापितो लक्ष्मणस्तां विजहौ।

असुरस्य प्रचण्डेन तपसा प्रसन्नो भगवान् शङ्कर स्वीयं रूपमदर्शयत्।

नरेन्द्रसक्ता दृष्टिं पार्श्वे कस्यापि क्रन्दितमाकर्ण्य राजा न्यवर्तयत्।

अस्मिंल्लोकेऽनुष्ठितो धर्मस्तस्य कर्तारं स्वर्गलोकं गमयति।

ग्रीष्मकाले घर्मोऽङ्गानि ग्लपयति, स्वेदं प्रवर्तयति तृष्णां च परिवर्धयति।

बहिर्द्वारि प्रवृत्तमृषिकुमारकं प्रवेशयितुं प्रतीहारीमाज्ञापयत् राजा।

देवदत्तो बलीवर्दं सस्यं भक्षयति।

कुसुमपुर एकस्मिन् गृहे शत्रुणा पातितमग्निं कृष्णवर्मा निरवापयत्।

साधारिका भावा मनो रमयन्ति।

संस्कृत में अनुवाद करो —

बाजीराव के दुष्ट कार्य हम को लज्जित करते हैं।

इन्द्र ने अपने रथ पर मातलि द्वारा अर्जुन को स्वर्ग बुलवाया (आ + नी)।

गुरु ने उसे आज्ञा दी कि वह प्रतिदिन उसकी गौ को चराये (चर्) और पानी पिलावे।

पहले वह अपनी प्रातःकाल की सन्ध्या समाप्त करता फिर १६ ब्राह्मणों को भोजन कराता और बाद में स्वयं खाता था।

पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र जहां युद्ध करते थे वहां जो जो होता था वह सब सञ्जय धृतराष्ट्र को सुनाता था।

दुर्भाग्यवश कभी कभी भाई एवं मित्रों को आपस में लड़वाता और एक दूसरे का सिर कटवाता है।

पिता को अपनी पुत्री का विवाह, सज्जन, कुलीन और युवक पुरुष से करना चाहिए। (परि + नी, वि + वह , उद् + वह्)।

ये श्लोक जो इस लड़के ने गाये वे मुझे उस समय की याद दिलाते हैं जब मैं अपनी प्रिया तथा भाई लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण पर्वत पर रहता था।

राम गोविन्द से धन चुराता है।

राजा गरीबों पर दया दिखाता है।

ग्वाला धेनु को घास खिलाता है।

लक्ष्मण सीता को रथपर चढ़ा कर गङ्गापार ले गया।

राजा ब्राह्मणों से धन ग्रहण करवाता है (प्रति + ग्रह)

वसिष्ठ दशरथ को यज्ञ करवाता है (यज्)।

शब्दकोषः

किन्नर (पु०) = देवयोनिविशेष। घर्म (पु०) = पसीना, घाम।
क्रन्दितम् (न०) = चिल्लाहट। तृष्णा (स्त्री०) = प्यास।
जाह्नवी (स्त्री०) = गङ्गा। पुष्यमित्र (स्त्री०) = एक राजा का
नगेन्द्र (पु०) = पर्वतराज हिमालय। नाम।
प्रतीहारी (स्त्री०) = द्वारपालिका। स्वेद (पु०) = पसीना।
काले काले, प्रसङ्गवशात्, कदा = कभी कभी।
विद्वान् (पु०) = कृतविद्य, महकृतविद्य, सुविनीत।
प्रस्रवण (पुं०) = एक पर्वत का नाम, (न०) सोता।

षड्विंशः पाठः

१—यदि वाक्य में दो अथवा दो से अधिक कर्ता च शब्द से जुड़े हुए हों और उसमें एक उत्तम पुरुष, दूसरा मध्यमपुरुष तथा तीसरा प्रथमपुरुष हो तो क्रिया उत्तमपुरुष के अनुसार होगी और क्रिया में वचन कर्ताओं की संख्या के अनुसार होगा। अर्थात् वाक्य में दो से अधिक कर्ता होने पर क्रिया बहुवचनान्त तथा दो कर्ता होने पर द्विवचनान्त होगी।

(१) कृष्ण, तू और मैं यहां खड़े हैं—

कृष्ण, त्वम् अहं च अत्र तिष्ठामः।

(२) तुम, मैं और गोविन्द शिकार के लिये क्यों न जावें।

कथं नाहं त्वं गोविन्दश्च मृगयार्थं गच्छेम ?

२—यदि वाक्य में एक कर्ता मध्यमपुरुष तथा दूसरा उत्तमपुरुष का हो और दोनों कर्ता 'च' शब्द से जुड़े हों तो क्रिया उत्तमपुरुष की होगी और उसका वचन उपर्युक्त नियम के अनुसार होगा।

तू और मैं पकाते हैं=त्वमहं च पचाव।

३—यदि वाक्य में एक कर्ता प्रथमपुरुष का और दूसरा मध्यमपुरुष का हो तो क्रिया मध्यमपुरुष के अनुसार होगी।

तुम, यज्ञदत्त और कर्ण यहीं रहो=त्वं यज्ञदत्तः कर्णश्चात्रैव तिष्ठत।

४—वाक्य में भिन्न २ पुरुषों के कर्ता 'च' से न मिल कर 'वा' शब्द से मिले हों तो सब से अन्तिम कर्ता के अनुसार क्रिया में पुरुष और वचन होंगे—

(१) वह या तुम सब यह काम करो=स यूयं वा एतत्कर्म कुरुत।

(२) वह तुम या मैं इस कठिन काम को कर सकते हैं।

स, त्वम् अहं वा एतद् दुष्करं कर्म सम्पादयितुं शक्नोमि।

(३) तुम या तुम्हारे भाई कचहरी में जावें।

त्वं तव भ्रातरो वा राजद्वारं गच्छेयुः।

५—'युष्मद्' शब्द के स्थान पर भी सम्मान सूचित करने के लिये 'भवत्' शब्द का प्रयोग करने पर 'भवत्' शब्द के साथ मध्यमपुरुष न आकर प्रथमपुरुष ही आता है:—

(१) आप क्या करते हैं=किं करोति भवान् ?

(२) आप किसको ढूँढ रहे हैं = कमन्विष्यन्ति भवन्तः ?

संस्कृत में अनुवाद करो :—

भाई सुधीर ! तुम और मैं पढ़ेंगे। तुम और राम विश्राम करो। तुम और मैं उस स्थान पर नहीं जायेंगे। भद्र ! गोपाल और तुम उस नगर में रहो। वह और मैं आजकल स्कूल में नहीं पढ़ते। वह और तुम आजकल कहाँ पढ़ते हो ? क्या हरि और तुम हरिद्वार में रहते हो ? कल तुम और मैं पढ़ेंगे माधव और तुम वेदान्त पढ़ो। श्याम और तुम आजकल कहाँ हो ?

शुद्ध करो :—

वत्स ! अहं च त्वं च दण्डकारण्यं गच्छथ। भरत ! त्वं शत्रुघ्नश्च अयोध्यायां तिष्ठताम्। वयं यूयं च कुत्र स्यास्यथ ? अहं स च तत्र गमिष्यतः। वयं च ते च वाराणसीमपश्यन्। अहं वा त्वं वा वेदमपठम्। स त्वं रामश्च सङ्गीतं शृण्वन्ति। भद्र ! त्वं दमनकश्च तत्सकाशे गच्छताम्। त्वं रामचन्द्रश्च राजधानीं गच्छताम्। वत्स ! न वयं वा यूयं वा कुसङ्गे स्थास्यामि। त्वम् एषा च समाज्ञापयति। युवां मम त्रयो भृत्याश्च राजद्वारं गच्छन्ति।

सप्तत्रिंशः पाठः

[नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो। साथ प्रमाणपूर्वक सिद्ध करो कि किस वाक्य में कौन कौन अशुद्धियाँ हैं]

सो हि मे मित्रः। सा नारी सन्तं कर्म कृतवान्। पितुः सार्थं पुत्रो गम्यते। सत्कर्मेभ्यो नमः। यूयमेव कर्म कुरु। सो धर्मात्मा पिता दृष्ट्वोवाच। स एकाकी गच्छनुक्तवान्। तत्रैको पौराणिक वसनास्ते। सो यदि आगच्छेयुस्तदा वयं गमिष्यन्ति। अहं मात्रायै काश्चित् फलानि दास्यति। बालकास्तस्मात् स्थाने तिष्ठत। यूयं पयः पिबन्तु। नरपस्या इदं कृतवान्। अहं सख्ये एतत् निवेदितवन्तः। त्वं तं बालकं एकं वस्त्रं ददातु। अहमेको स्वादु फलं प्राप्नोति। ज्ञानिन गच्छन्ति। यूयं धनं गृह्णन्तु। बालका तान् पश्यन्ति। अहं तान्नवलोकयित्वा विस्मिताभ्वाम.। सो माता दृष्ट्वा आनन्दितो मनुशाच। हिरण्यकशिपुर्ष एको पुनरासीत्। सस्त दृष्ट्वा प्रीतो भवन्ति। अहं दरिद्रस्य वस्त्रं ददाति। त्वं

बालिका अत्र वर्तसे। महतोऽय वृक्षो पश्यते। क अपि कुमारो क्षुधया ज्विलश्यन रुदति। त्व एकाकिरत्र किं करोति ? युधिष्ठिरोवाच-भ्रातर आगच्छ मातार प्रनमामः। सो पितार दृष्ट्वा अभिवादयित्वा च अब्रवीत्। तस्मिन्नेव समये एक बालको आजगाम। त्व यदुच्यते तद् करिष्यते। चत्वार' स्वसर एकत्रे निवसन्ते। भगवानस्य वाल्मीके आश्रम. पश्य। ईदश एव पुनो रामायनकथा। कीदश असौ पुनो देशः। तान् युवानः क्रीडन्तः पश्यामि।

देशो चैषा कर्पूरद्वीपो स्वर्गोपमा। धिक्, प्रतिनिवृत्ताः सर्वे सैन्यानि मम, अहो, को एषो बाल., क वा भवान्, अथवा भवितव्य तैव बलवान्। अस्ति सौराष्ट्रे वेत्रवती नाम नगर'। आसीत् मगध देशेषु पाटलिपुत्र नाम नगरी। पूर्वे दिशि भानु उदेति। अस्तमितायां भानौ प्रस्थितो वयम्। एव विचारयित्वा तेन वाराणस्यां गत। सुत वत्सला सा तमङ्कमारोपयित्वा गाढमाश्लेषयित्वा च इति वाक्य उवाच। तस्य वचनमाकर्णयित्वा राजा ग्राम नहिरैव स्थिता। सखाया वचनं श्रुत्वा रामोवाच एष एवायुक्तम्। भगवानस्य नाम उच्चारयित्वा शय्या मुञ्च। महता क्षुधाया पीडिता हि सः। कर्मणा विना किमपि सिद्धि न भवति। वय एक फल भक्षिष्याम। सखो पृच्छते कथमेतत्? आत्मा. सर्वात् प्रिय। पितां प्रति भक्ति कर्तव्यः। कथ भवान् धाव नागच्छसि। ब्रुहि मां के के वस्तूनि विद्यामन्दिरे सन्ति ? ईश्वरस्य महिमाया व्याप्ता जगत्। हे वत्स ! मे धनुमानीहि दत्त यद् रोचति तत् कुरुताम्। धिक् मूर्ख' तव सार्धं मैत्री न कार्य'। शरदि मेघाः पश्यन्ते। ह्योऽहं राजमार्गेन गच्छन्तस्त्रयो जनानपश्यत्। सर्वे दिवायां कर्मं कुर्वन्ति रात्रे विश्राम्यन्ति। स अधुना भवनस्य बहिर्गत्वा आसने अध्यासते। अह एवं कथिते ते अन्य स्थान गतवान्। पदां निरी क्षन्त मामवलोकयित्वा स हसनुवाच। महाराजा दशरथो कैकयी द्वे वरो दत्तवान्। तस्य जिह्वा मधुस्तिष्ठति वक्ते हलाहले विषम्। स कदापि मिथ्यां न वदति न वा कटु भाषति। ते गृहस्य प्रतिनिवर्तते। राजा दशरथस्य त्रय पत्न्य आसीत्। तेषां कौशल्या ज्येष्ठा सुमित्रा च कनिष्ठा बभूवु। कौसल्या राममजायत। सो व्याघ्रस्य भयेन कम्पति।

दुष्कर एषा मम। दरिद्र धनं देहि। अथैकदा रात्रे गते उदिते भगवाने भास्करे वयमेक धावन्तमश्वमपश्यम्। अश्व अश्वमिति शिशुभिर्महत् शब्द कृतम्। जयात् धावन्तेन तेन कापि वृद्धा योषिता आहता। ते दुहिताया इदं महान् दोष यत् सा सत्यवान पतित्वे वृतवान्। सदैव धर्माचरण साधुभिर्मत.। पुण्य नराना दुर्लभम्। राजपुरुषैस्त धर्माधिकरण नीतम्। धन दत्वा दत्वा दरिद्र त हरिरप्रविशत् पुरम्। एकदा मृगयाप्रसङ्गन वन परिभ्रमनह महतो क्लेशेन शान्वमाश्रमपदमैक्षत्। दण्डकारण्य अधिवसत राम खरादया राक्षसाः आक्रमण चकार। आचार्य आसने अधिस्थित्वा प्रेयान छात्रानध्यापयामास। आसनादुत्तिष्ठमानस्य बन्धो' सह अह रामश्च ते गृह गच्छति। यम' सावित्री निवर्तयित्वा स्वकीये भवने प्रातिष्ठत्। परस्परं विवदन्तस्ते धर्माधिकरणे गत्वा राजाण न्यवेदयन। युवा गृह गता। अस्माक सार्ध यूयमागच्छ। परोक्षे कार्यहन्तार प्रत्यक्षे प्रियवादिं मित्र वर्जयेत्। सो राज्ञायाः पुत्रोऽस्मान् चतुराण फलानि प्रदत्वा गुरूण् प्रणम्य च गृहमागच्छाम। पितो! रक्ष माम्। विदुष धर्म पृच्छ। सिंहनीमन्विष्यति सिंह। धर्मस्य विना कुत. सुखम्। यथाशक्ति कर्म कुरु।

मावो गतो मे पुत्र'। भ्रातारो न विवाद कुर्यु.। शिशु सर्वाणामानन्द करोति। मनोहारी हास्य बालकस्य कथा। सूर्यस्य सह चन्द्रस्योपमा नास्ति। नक्षत्राणि दर्शसि किम्? रामलक्ष्मणस्य द्वयोरेव यशः गीयते। भवान् भिक्षा देहि।

छात्रों को सूचना :—

इस भाग में दिये हुए संस्कृतसन्दर्भों का हिन्दी में तथा हिन्दीसन्दर्भों का संस्कृत में प्रतिदिन एक के हिसाब से अनुवाद करो। कठिन संस्कृत शब्दों का अर्थ अथवा हिन्दी के अज्ञात शब्दों का संस्कृत, पुस्तक के अन्त में दिये हुए शब्दकोष में देखो। जो शब्द उसमें भी न मिले उनके लिए अपने अध्यापक अथवा कोष से सहायता लो।

यथायोग्य हिन्दी तथा संस्कृत में अनुवाद करो :—

(१)

वत्स ! कुशलं ते भवतु। वत्स ! पुरञ्जन ! इदं पुनः पृच्छामि, कोऽयं ते व्यामोहः ? किं त्वमेवमस्थाने कुप्यसि ? किं त्वमेवमुन्मादसीव ? न त्वं केनापि आलपसि, न केनापि क्रीडसि, न च किञ्चिद् अनुतिष्ठसि। पश्यैते ब्रह्मचारिणः सानन्दं नृत्यन्तीव। त्वमेवैक इत्थं विषण्णस्तिष्ठसि। न ते चित्तं सन्तुष्यति। वत्स ! किमेवं मुह्यसि ? कस्तवापराध्यति ? अहन्तु न कस्याप्यपराधं पश्यामि। नहि सर्वे ब्रह्मचारिणस्तव शत्रवः। स्निह्यत्येव तेषाञ्चित्तम्। आयुष्मन् ! ब्रह्मचारी त्वम्। नहि ब्रह्मचारी एवं कुप्यति। तदलमेतेन कोपेन। मुञ्चैनं शीघ्रम्। त्यजेद् दौर्मनस्यम्। वत्स ! यदि त्वं न प्रसीदसि, न सन्तुष्यसि, तर्हि कथमयं सारस्वतोत्सवः सिध्यतु। तद्विसृजेमं निर्बन्धम्, सङ्गच्छस्व च सर्वैः सुहृद्भिः। गच्छ त्वमधुना शान्तिनाथेन सह। प्रत्यासीदति मे कार्यान्तरकाल इत्यहमपि गच्छामि।



एक बार पेट और दूसरे अङ्गों में झगड़ा हो गया। शरीर के दूसरे अङ्गों ने कहा कि पेट कुछ काम नहीं करता, चुपचाप बैठा रहता है। एक दिन सलाह कर के उन सबने अपना अपना काम करना छोड़ दिया। यह हाल देख पेट चुप रह गया। पहले हाथ ने कान से कहा कि—'मैं आगे से तुम्हें ही भोजन खिलाया करूँगा'। एक दिन हाथ ने गरमागरम दूध लेकर कान में डाल दिया। गरम दूध से कान जल गया। उस दिन से कान ने सभी अङ्गों का साथ दिया। इसी तरह कई दिन बीत गये। पेट में खाना न पहुँचने से सभी अङ्ग शिथिल हो गये, उनकी यह दशा हो गई कि कान सुन नहीं सकता था, जबान बोल नहीं सकती थी, हाथ काम नहीं कर सकते थे, पाँव चल नहीं सकते थे, आँखों से दिखाई नहीं देता था। एक दिन पेट ने उनकी यह दुर्दशा देखकर कहा—'भाइयो तुम बड़ी भूल में हो। तुम समझते हो कि मैं कोई काम नहीं करता पर वास्तव में यह सत्य नहीं जो कुछ तुम मुझे खिलाते हो मैं उसमें से हर एक को हिस्सा पहुँचा देता हूँ'।

(२)

तथा रुदन्तं तु तं पुनरवदम्—'सखे! कपिञ्जल! किमधुना शोके-न। समुपविश्य तावत्कथय यथावृत्तं तस्य वृत्तान्तम्। अपि कुशलं तातस्य? स्मरति वा माम्? दुःखितो वा मदीयेन दुःखेन। मद्वृत्तान्त-माकर्ण्य किमुक्तवान्? कुपितो न वेति।

सखे! कुशलं तातस्य। अथ चास्मद्वृत्तान्तः प्रथमतरमेव तातेन दिव्येन चक्षुषा दृष्टः। दृष्ट्वा च प्रतिक्रियार्थं कर्म प्रारब्धम्। वत्स! कपिञ्जल! परित्यज्यतां स्वदोषशङ्का। ममैवायं खलु शठमतेः सर्व व दोषः।

यह सुन कंस प्रसन्न हो बोला—'अक्रूर जी! आज तुमने बड़ा काम किया जो राम-कृष्ण को ले आये। अब घर जाकर विश्राम करो'। कंस की आज्ञा पाकर अक्रूर अपने घर चले गये। इधर, कंस चित्त में बड़ा प्रसन्न हुआ कि आज मेरी र में आगया। अब मेरे हाथों से जीता कैसे बचेगा? घर से चलते समय कृष्ण बलराम ने नन्द से पूछा—'आपकी आज्ञा हो तो हम नगर देख आवें'। यह सुन पहले तो नन्द ने खाने को कुछ मिठाई दी, पीछे बोले-'अच्छा, जाओ अब विलम्ब मत करो'। यह सुनते ही दोनों भाई अपने मित्रों को साथ ले नगर देखने चले। नगर के पास जाकर देखा कि चारों ओर वन-उपवन-फूल रहे हैं वृक्षों पर बैठे पक्षी चहचहा रहे हैं। बड़े बड़े सरोवर जल से भरे हैं। शीतल हवा चल रही है। वन की शोभा देखते देखते दोनों भाई मथुरा को चले।

(३)

अथ वादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत्—'अपनयतु नः कुतूहल-म्, आवेदयतु भवान् कथं जातः? केन वा नाम कृतम्? का माता को ते पिता? कथं वेदानामागमः? कथं शास्त्राणां परिचयः? कुतः कलाः समासादिताः? क वा पूर्वमुषितम्? कियद्वा वयः? कथं पञ्ज-रबन्धः? इह वा कथमागमनमिति'। वैशम्पायनस्तु सबहुमानमव-नीपतिना पृष्टो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्—देव! यदि कौतुक-माकर्ण्यताम्।

नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि।
कुशकण्टकविद्धोऽपि प्राप्तकालो न जीवति॥

देहे पातिनि का रक्षा यशो रक्ष्यमपातवत् ।
नरः पतितकायोऽपि यशःकायेन जीवति' ॥

मीरा एक राठौर सामन्त की कन्या थी। दो बात के लिए तो वह बचपन ही विख्यात हो गई थी। एक तो अलौकिक रूपसौन्दर्य के लिये और दूसरे म वाणी के लिए। उसके ये दोनों गुण देश-विदेश सब जगह फैल गये। यहाँ कि उसकी सुन्दरता को देखने और उसके सुरीले गाने को सुनने के लिए दू से लोग उसके पिता के पास आया करते थे। मीरा अपने रूपलावण्य और स्वरमाधुर्य के द्वारा सबको मुग्ध कर देती थीं। मीरा देवी बचपन से ही ईश्वर भक्ति में लीन रहती थी। उसके जी में सांसारिक भोग-विलास की लालसा थी नहीं। अपने पिता के घर मीरा सारे दिन सब को साथ लिये भगवान् के न और गुणों का ही गान किया करती थी।

(४)

ततः पक्षिभिरुक्तम्—'अरे पाप! दुष्ट बक! अस्माकम्भूमौ च अस्माकं स्वामिनमधिक्षिपसि! तन्न क्षन्तव्यमिदानीम्। इत्युक्त्वा सर्वे चञ्चुभिर्हत्वा सकोपा अवदन्—'पश्य रे मूर्ख! स हंसस्तव र सर्वथा मृदुः। तस्य राज्येऽधिकार एव नास्ति यत एकान्ततो मृदुः तलगतमप्यर्थं रक्षितुमक्षमः। कथं स पृथिवीं शास्ति राज्यं वा किम्? त्वञ्च कूपमण्डूकः, तेन तदाश्रयमुपक्षिपसि'।

क नु तेऽद्य पिता राजन्! क नु तेऽद्य पितामहाः।
न त्वम्पश्यसि तानद्य न त्वाम्पश्यन्ति तेऽनघ! ॥
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः।
ऐश्वर्यं प्रियसंवासो मुह्येत्तत्र न पण्डितः ॥
आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया।
तथा चेद्विश्वकर्तारं, को न मुच्येत बन्धनात्? ॥

'बेटा दुर्योधन! काम और क्रोधके वश होनेसे तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई इसी से तुम गुरुजनों का कल्याणकारी उपदेश नहीं सुनते। किन्तु हे पुत्र! जब अपनी अधर्म बुद्धि को ही नहीं जीत सकते तब राज्य जीतने या राज्य की करने की तुम किस तरह आशा करते हो। बेटा! आज तक पाण्डवों के साथ तु

। बुरा व्यवहार किया है उसका प्रायश्चित्त उन्हें उनका राज्य देकर कर डालो।
म समझते हो कि युद्ध होने पर भीष्म, द्रोण आदि सब तरह तुम्हारी ही तरफ
गे। यह बात कभी नहीं हो सकती। पाण्डवों का भी राज्य में हक है और
र्मात्मा होने के कारण सब लोग उन्हींको अधिक चाहते हैं। इसलिए हे पुत्र।
ति स्थापन करके सबकी रक्षा करो और पाण्डवों के साथ मेल करके सुख
र्वक रहो'।

(५)

निद्रा नाम जीवानां हितकरी वृत्तिः शरीरस्थितेः सहायभूता। इय
यथाकालं सेविता परमानन्दं जनयति, क्लेशानपहन्ति श्रान्तिश्चापन
ति, शोकं दूरीकरोति, शरीरावसादं नाशयति, वातादिधातुसाम्यं
धत्ते, चेतसि प्रसादं तनुते, अन्तः किमप्योजः सन्दधाति, दुश्चिन्ता
वारयति, विस्मारयति च चिरवैरम्। किम्बहुना--कुरुते हि स्वा
साने सर्वथा जीवान् पुनर्नवीभूतानेव।

निद्रानिष्ठं जीवं क्षुधा न बाधते, न तृष्णा तापयति। निद्रितस्य न
धते कापि शङ्का, नैव मनोव्यथा। निद्रा नाम स्नेहमयी जननीव
र्वथा जीवान् पुत्रानिव सुखयति कान्तेव च प्रेममयी लोचने दृढ
रिचुम्ब्य समानन्दयति नितरां जीवसमूहम्।

अपनी विधवा पुत्री को अपने पास रखकर भास्कराचार्य उसको ज्योतिर्विद्या
ढ़ाने लगे। कहा जाता है कि लीलावती विद्या में इतनी प्रवीण थी कि वह वृक्षके
त्तों की ठीक संख्या तक बता देती थी। लीलावती ने अपना सारा जीवन विद्या
ध्ययन के ही काम में व्यतीत किया।

पञ्चवटी की शोभा देखकर रामचन्द्र जी बहुत प्रसन्न हुए। वास्तव में पञ्चवटी
थान ही ऐसा था। वाल्मीकिने पञ्चवटी का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया है।

सुनिए मेरे चार भाई और सात बहिनें हैं।

मैं तो अपने सब छोटे भाई के साथ पचीस दिन के बाद फिर यहाँ आ जाऊँगा
रन्तु मेरी चार बहिनें यहीं पर ही रहेंगी।

(६)

आसीदुत्तरापथे एकः पण्डितग्रामः। तस्य दक्षिणस्यां दिशि एको
महान् वटतरुरशोभत। एकदा तस्य तरोरधस्तादनेके ब्रह्मपरायणा महा--

त्मानो विचारगोष्ठीं रचयामासुः । तत्रैकेनोक्तम्—'नास्ति कश्चिदीश्व नाम जगतो नियन्ता । कर्मैव प्रधानम् । विचार्यन्तां तावत्कर्मणां क दृशोऽस्ति महिमा । ईश्वरावतारोऽपि रामो निजेन भ्रात्रा सीतया च सह वने परिभ्रमन् हैम हरिणमन्वगात् । रावणश्च तस्य प्रियां भार्यां जहार । तदासौ बहु विलपन् वानरैः सह सख्यमकरोत् । अतो मन्त ऽयमिदम् यत्रैव येन सुखं दुःखं वा भोक्तव्यं भवति तत्रैवासौ रज्ज्वे बद्धो बलाद् दैवेन नीयते । यथा यथा येषां येषां जीवानां यादृ यादृशी भवितव्यतोदेति, तथा तथा तेषां तेषां तादृशी तादृशी बुद्धि रपि स्वत एव सम्पद्यते' ।

भद्रसेन ने कहा—'उठो भाई ! रात्रि के चार बज चुके हैं । ब्राह्ममुहूर्त गया है । सब से प्रथम भगवान् का चिन्तन करो । फिर आवश्यक शौचादि निवृत्त हो । उसके बाद स्नान—सन्ध्या करके अपने स्वाध्याय का आर करो' । यह सुन सब ब्रह्मचारी अपने अपने बिस्तरे को छोड़ कर यथावत् नि विधि समाप्त करने में तत्पर हुए । उसी समय उनके गुरु आ गये । आते गुरुजी ने कहा कि—सब छात्र मेरी बात सुनें 'आज नौ बजे के लगभग दरभ नरेश पाठशाला का निरीक्षण करेंगे । उनके साथ अनेक बड़ शास्त्रों के वि भी आ रहे हैं, वे योग्यतानुसार परीक्षा लेंगे । ऐसा सुना जाता है । किन्तु निश्चित बात है कि—उनकी आज्ञा के अनुसार उनके प्रधान मन्त्री प्रत्येक छ को पाँच पाँच मुद्रा, एक एक धोतवस्त्र, एक एक अगोछा देंगे । सबको स्वर से वेद पाठ सुनाना होगा' ।

(७)

अपर आह—'ईश्वरं विना जडं कर्म स्वयं फलं दातुं नैव समर्थम् यथा राजा शुभकर्मकारिणो नरान् दृष्ट्वा प्रसीदति, अशुभकर्मकारिभ्य क्रुध्यति यथाकर्म यथाश्रुतं च तेभ्यः फलं ददाति, एवमेव ईश्वरोऽ सुकृतासुकृतकारिभ्यः कर्मानुरूपमेव फलं वितरति । अन्यथा प कृत्वा कोऽपि दुःखभागी न स्यात् । नहि चौर्यं कृत्वा कश्चिच्चोर स्व मेव कारागारं विशति । तस्मादस्त्येवेश्वरो नाम जगन्नियन्तेति ।

अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्यो भार्या तथैव च ।
अभावे सति सन्तोषः, स्वर्गस्थोऽसौ महीतले ॥

मातरं पितरं पुत्रं दारानतिथिसोदरान्।
हित्वा गृही न भुञ्जीयादेकाकी न कदाचन ॥

पाप छिपाये कदापि नहीं छिपता । पाप का फल अवश्य भोगना पड़ता है । आँधी की तरह पाप अवश्य प्रकट हो ही जाता है । किसी कालेज के होस्टल के एक कमरे में तीसरी श्रेणी के दो विद्यार्थी रहते थे । एक दिन का वृत्तान्त सुनिये । बिजली के लैम्पों से कमरा जगमगा रहा था पृथक् पृथक् मेज, कुर्सी लगी थी । दो बड़े बड़े पलंग सफेद बिस्तरों से सजे थे । दोनों छात्र अपने २ पलंग पर लेट कर स्वाध्याय में दत्तचित थे । प्राय दोनों की आयु समान थी । दोनों बहुत सुन्दर, तरुण और मेधावी थे । एक का नाम 'चन्द्रशेखर' और दूसरे का नाम 'निरञ्जन' था। चन्द्रशेखर शान्त तथा गम्भीर प्रकृति था । निरञ्जन का स्वभाव कुछ तर्क वितर्क करने का था ।

(८)

कस्मिंश्चिद् ग्रामे सक्तुधनो नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म । कदाचित्तेन इतस्ततो भिक्षां कृत्वा शनैः शनैः सक्तुभिरेको घटः पूर्णतां नीतः । अथैकदा सक्तुपूर्णं घटं दृष्ट्वा प्रसन्नमनाः तस्य गले रज्ज्वा बद्ध्वा उच्चै कुड्यकीलकेन सहाबध्नात् । स्वयञ्च तदधः खट्वोपरि शयितो हस्तेन दण्डं परिभ्रमयन् मनस्येवमचिन्तयत्—यदहं वैशाखसङ्क्रान्तिवेलायां सक्तुघटं विक्रीय रूप्यकाणां विंशतिं लब्ध्वा पुनस्तैः रूप्यकैर्नानावस्तूनि क्रीत्वा व्यापारं करिष्यामि । तेन व्यापारेण शनैः शनैः कालान्तरे श्रेष्ठी भूत्वा अनेकाः सुन्दरीर्विवाहयिष्यामि । तासु च मम काऽतिप्रिया भविष्यति ।

यदा चैवं, तदेतराः परस्परमीर्ष्यया कलहं करिष्यन्ति । अहञ्च तदनुचितं मत्वा कोपाविष्टो भूत्वा ताः इत्थं लगुडेन हनिष्यामि । तमेव घटं लगुडेन ताडितवान्। तदा स घटः दण्डाघातेन भग्नः । सक्तवो विशराकृता भेजुः ।

पढ़ते पढ़ते अचानक निरञ्जन ने चन्द्र शेखर की ओर देखकर कहा भाई ! पाप क्या वस्तु है ?' चन्द्रशेखर बोला—'आश्चर्य' तुमको आज तक यही ज्ञात न हुआ कि पाप क्या वस्तु है ?' निरञ्जन–'क्या हुआ आप ही बतादें—पाप किसे

कहते हैं ?' चन्द्रशेखर—'बुरे काम का करना पाप है'। निरञ्जन—'यह ठीक नहीं कभी कभी बुरा काम भी किया जाता है पर वह पाप नहीं होता। क्या झूठ बोल कर गौ की जान बचा लेना पाप है। नहीं, कदापि नहीं'। यह सुनकर चन्द्रशेखर ने कहा—'तुम्हें तर्क वितर्क करने की बहुत बान है, कभी धोखा खाओगे, चुप रहो अपना काम करो'। निरञ्जन—'अस्तु, मैं चुप रहता हूँ, तथापि यह अवश्य कहूँगा कि जिससे अपने वा दूसरे को हानि पहुँचे वही पाप है'।

(६)

कस्मिंश्चिन्नगरे एकं महत् मन्दिरमासीत्। तत्रैको महात्मा निवसति स्म। स सदा वेदान्तशास्त्राभ्यासमकरोत्। लोकानां कल्याणाय शास्त्रकथाश्चाऽश्रावयत्। तत्र अनेके नरा अनेका नार्यश्च श्रद्धया कथां श्रोतु सङ्घीभूय प्रतिदिनं प्रयान्ति स्म। देवप्रतिमाश्च पूजयन्तिस्म।

कथामन्दिरस्य बहिर्द्वारि कश्चन वैश्य कान्दविको (कन्दुका, हलवाई) भूत्वा पेटान्, पूरिका, पोलिका, कुण्डलिनी, कलाकन्दान्, मुक्तामोदकान्, लड्डुकान्, अन्यांश्चापि विविधान् भक्ष्यान् भोज्यांश्च पदार्थान् विक्रीय स्वपरिवारं पालयामास। समये समये च तस्य कथामप्यशृणोत्।

क्षमातुल्यं तपो नास्ति सन्तोषान्न परं सुखम्।
न च तृष्णापरो व्याधिर्नच धर्मो दयापरः॥
नास्ति सत्यात्परो धर्मो न सत्याद्विद्यते परम्।
नहि तीव्रतरं किञ्चिदनृतादिह विद्यते॥

कुछ समय बीत गया। दोनों विद्यार्थी अपने अपने कामों में लगे रहे। परन्तु निरञ्जन ने अपने भाव के अनुसार पड़ोस में रहने वाली एक कुलीन स्त्री को देखना प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि वह स्त्री बहुत सुन्दरी थी। निरञ्जन जानता था कि मेरे देखने से इस स्त्री को कोई हानि नहीं पहुँचती, किसी को मालूम तो है ही नहीं। एक दिन कामान्ध होकर उसने उस स्त्री पर कङ्कर फेंका। स्त्री ने अपने पति से उसकी दुष्टता का वृत्तान्त सुना दिया। स्त्री के पति ने प्रिंसिपल के आगे उसकी शिकायत की। प्रिन्सिपल ने भले प्रकार तहकीकात करके निरञ्जन को कालेज से बाहर निकाल दिया। तब उसको कई एक दुर्व्यसनों ने घेर

लिया अंत में उसे राजयक्ष्मा हो गया और वह सदा के लिए संसार से विदा हो गया। सच है, पाप छिपाए नहीं छिपता।

(१०)

एवं बहुतिथे काले याते एकदा सत्सङ्गवेलायां प्राञ्जलिर्भूत्वा तत्यैव साधोः पादारविन्दयुगलं प्राणंसीत्, निवेदनञ्चाकार्षीत्—यद् भगवन्! साधो! चिरात्राय भवतः सकाशादहं वेदान्तकथामश्रौषम्, अनेकवारञ्च भवदुपदिष्टमार्गेण देहादिभ्योऽनात्मपदार्थेभ्यो भिन्नमात्मानं निरचैषम्। परमद्यापि ममानन्दलाभो नाभूत्। तत्किं कारणमिति विनयेन श्रीमन्तं पृच्छामि'। अथासौ महात्मा तस्य तादृशं विनयमालोक्य तं श्रद्धान्वितञ्च निश्चित्याब्रवीत्—'अयि सौम्य! तव पूर्वजन्मकृतं किञ्चित् पापकमस्ति, तस्य प्रतिबन्धेन श्रुते मननेऽपि च शास्त्रार्थे आत्मानन्दं न लब्धवानसि। धैर्यं धर। केनापि सत्पुण्येन तस्मिन् पापके विनष्टे नूनं ब्रह्मानन्दं लप्स्यसे'। अथासावेतत् साधुवचः श्रुत्वा तूष्णीं तस्थौ। स्वव्यापारं धर्मकर्म च पूर्ववदेव व्यधात्।

एक नगर में कोई साहूकार रहता था। उसके पांच पुत्र थे। समय पाकर साहूकार बूढ़ा हो गया। उसका सब धन पुत्रों ने ले लिया और पिता से नम्रता पूर्वक निवेदन किया—'अब आप कोई काम न करें। आनन्दपूर्वक ड्योढ़ी में आसन जमा लें। यथेष्ट भोजनादि सेवा हो जायगी। पर ध्यान रहे कि कोई अपरिचित आदमी अन्दर न आ सके'। पिता ने अपने पुत्रों की बात मान ली। कुछ दिवस बीतने पर उसके पुत्रों की स्त्रियों ने अपने पतियों से कहा—तुम्हारा पिता बहुत थूकता है, सब स्थान खराब कर देता है। मालूम नहीं यह कब मरेगा! इस को ऊपर के चौबारा में ले जाओ। वहां इसके पास एक घण्टी रख दो। जब इसको भूख प्यास लगे अथवा और आवश्यकता हो तो घण्टी बजा दिया करे, हम इस की इच्छा के अनुसार सेवा कर दिया करेंगी। पुत्रों ने ऐसा ही किया। पिता ने यह भी मान लिया।

(११)

अथैकदा यज्ञन भारवाही पान्थश्रमकारो घर्मार्तः सन् तस्य विपणिपार्श्वे पतित्वा मुमूर्छ। स च वैश्योऽस्पृश्यमपि तं तदवस्थं दृष्ट्वाऽऽ-

पत्कर्तव्यानुसारेण क्षिप्रमेव कूपात् शीतलं जलमुद्धृत्य तस्य मुखे बिन्दुशः पातयामास ।

स च चर्मकारस्तेन शीतलोपचारेण लब्धसंज्ञः शान्तो भूत्वा यथाभीष्टं दिशमगच्छत् । तद्दिनादारभ्य तस्य वैश्यस्य हृदि ब्रह्मानन्दानुभवः समुत्पन्नः । तदा महात्मानं सर्वं वृत्तान्तमश्रावयत् । स चोवाच-'सत्यं सौम्य ! 'दया हि परमो धर्मः' । अनेनैव तव पूर्वपापकं प्रनष्टम् । प्रवृत्ते च प्रतिबन्धे ब्रह्मानन्दमाप्तवानसि' ।

एक दिन का वृत्तान्त है कि उस बूढे का पोता अपने बाबाके पास चौबारा में पहुँच गया । वह अपने बाबा के पास खेलने लगा । बाबा भी उसे प्यार कर बहुत प्रसन्न हुआ । अन्तत वह बालक अपने दादा की घण्टी ले कर नीचे चला आया । पर किसी का इस पर ध्यान न गया । जब बूढ़े को भूख प्यास सताने लगी तो उस ने इधर उधर घण्टी की तलाश की, पर वह न मिली । कोई उसकी आवाज सुन न सका । क्योंकि, चिल्लाने की शक्ति उसमें थी ही नहीं । वह भूख प्यास से तड़प तड़प कर मर गया । उसके पुत्र घर आये तो उन्होंने स्त्रियों से पूछा-'क्या पिता जी भोजन कर चुके ?' स्त्रियों ने कहा—'आज उनको भूख-प्यास नहीं लगी, यदि लगती तो घण्टी बजाते' । यह सुन सब पुत्र ऊपर गये, देखा तो पिता जी सदा के लिए सो गये हैं ।

संसार म प्राय निर्धन बूढ़ों की यही दशा होती है ।

(१२)

एकदा भोजराजो धारानगरे विचरन् कश्चित् शिवालये प्रसुप्तं पुरुषद्वयमपश्यत् । तयोरेको विगतनिद्रो वक्ति-'अहो, ममास्तराऽऽसन्न एव कस्त्वं प्रसुप्तोऽसि, जागर्षि नो वा ?' ततोऽपर आह-'विप्र ! प्रणतोऽस्मि । अहमपि ब्राह्मणपुत्रस्त्वामत्र प्रथमरात्रौ शयानं वीक्ष्य प्रदीप्ते प्रदीपे कमण्डलूपवीतादिभिर्ब्राह्मणं ज्ञात्वा भवदास्तरासन्न एव निद्रितोऽभूवम् । इदानीं भवद्गिरमाकर्ण्य प्रबुद्धोऽस्मि' । प्रथम आह-'वत्स ! यदि त्वं प्रणतोऽसि, दीर्घायुर्भव वद, कुत आगम्यते ? किं ते नाम ? अत्र च किं कार्यम् ?' अपर आह-'विप्रवर ! भास्करशर्मास्मि नामत, पश्चिमसमुद्रतीरे प्रभासतीर्थसमीपे मे वसतिः । तत्र भोजराजस्य दानशौण्डता

बहुभिर्व्याघ्रैर्मानां बहुशोऽश्रौषम् । तदहमपि याचितुमागतोऽस्मि । त्वं मम वृद्धत्वात् पितृकल्पोऽसि, तत् त्वमपि स्वपरिचयं ब्रूहि' इति ।

सुनिये, इस बात पर मैं बालू के पुल का वृत्तान्त आप लोगों को सुनाता हूँ— 'प्रतिष्ठान नगर में तपोदत्त नामक एक ब्राह्मण था। उसने बाल्यावस्था में पिता के बहुत समझाने और ताड़ना करने पर भी विद्या नहीं पढ़ी। जब अवस्था अधिक हुई तब सब लोगों से अपनी निन्दा सुन कर पश्चात्ताप करने लगा और विद्या की प्राप्ति के लिए गङ्गातट पर जाकर तपस्या करने लगा। चिरकाल के अनन्तर उसे उग्र तप करता देखकर, इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके उसके पास आये और उसीके आगे गङ्गाकिनारे की बालू ले लेकर जल प्रवाह में फेंकने लगे। यह देख वह तपोदत्त मौन त्यागकर बोला—'हे ब्राह्मण! तुम यह क्या कर रहे हो?' उसके बार बार पूछने पर इन्द्र ने कहा 'लोगों के पार जाने के लिए मैं गङ्गा में पुल बना रहा हूँ। जब यह पुल बन जायगा तब सब लोग अनायास ही सुखसे गङ्गा पार हो जाया करेंगे।

सोऽप्याह—'वत्स! शाकल्य इति मे नाम। मयैकशिलानगर्यामागम्यते भोजराजं प्रति द्रविणाशयैव। वत्स भास्करशर्मन्! त्वयाऽनुक्तमपि त्वन्मनोदुःखं त्वद्वचोभङ्ग्यैव स्पष्टं प्रतीयते। तद्वद, कीदृशं तदिति'। ततो भास्करः प्राह—'तात! किं ब्रवीमि श्रूयताम्—

क्षुत्क्षामाः शिशवः शवा इव, भृशं मन्दाशया बान्धवा
लिप्ता जर्जरगर्गरी जतुलवैर्नो मां तथा बाधते।
गेहिन्या त्रुटितांशुकं प्रथयितुं कृत्वा स काकुस्मितं
कुप्यन्ती प्रतिलोकवेश्मगृहिणी सूचीं यथा याचिता ॥

तच्छ्रुत्वा राजा सर्वाभरणान्यवतार्य तस्मै दत्त्वा प्राह—'भास्कर! सीदन्त्यतीव ते बालाः, तत्—शीघ्रं स्वदेशं प्रयाहीति'।

यह सुन कर तपोदत्त ने कहा 'रे मूर्ख यह बालू तो जलमें बही जा रही है। भला इससे कभी गङ्गा जी में पुल बन सकता है? कदापि नहीं, यह तेरा प्रयत्न सर्वथा निष्फल है। तब इन्द्र ने हँस कर कहा—'जो तुम यह जानते हो तो बिना पढ़ने और परिश्रम करने के केवल व्रत उपवासादि करके विद्योपार्जन करने का उद्योग क्यों कर रहे हो? अक्षर सीखे बिना लिखना और अध्ययन के बिना विद्या

बिना भित्ति के चित्र के समान है। तब तुम्हारा भी यह यत्न मेरी ही तरह निष्फ
है'। इन्द्र के वचन सुन कर तपोदत्त ने इन पर विश्वास किया। वह त
त्याग कर अपने घर चला गया और गुरु के पास अक्षराभ्यास, और पढ़नेमें कठि
परिश्रम करके थोड़े ही दिनों में अच्छा विद्वान् हो गया। सारांश यह कि बि
अभ्यास के विद्या प्राप्त नहीं होती'।

(१३)

अथ पाण्डुर्व्यचिन्तयत्—'किमिदमन्यदाचरतो मेऽन्यदापतितम्
नहि निरङ्कुशः कार्यमकार्यं वा विमृशति। ईश्वरो हि पुरुषः परस्य दुख
दुःखे न संवेदयते। नात्यात्मनो हिताहिते पश्यति। मदान्धो गज इ
परिभ्रमन् यत्र कुत्रापि दुस्तरमहागर्ते निपत्य सीदति। मदस्य हि
मूलमङ्गत्व न केवलं मरणम्। अतः प्रभुत्वस्य त्यागेन तपसैवायुषः शेषं
मया यापयितव्यो न भोगेन'। इति निश्चितमतिरसौ दुःखित इव पवि
वार कथंकथमपि नगराय निवर्तयामास। ततश्च नागरकैरभ्यर्थितो धृत
राष्ट्रः स्वपित्रा गाङ्गेयेन यवीयसा भ्रात्रा विदुरेण चानुनयः स्वयं राज्य
मकरोत्।

एक पहाड़ के नीचे एक नदी बहती थी। नदी के किनारे किनारे पहाड़
मिला हुआ एक तंग रास्ता जाता था। संयोगवश दो बकरे एक ही समय उ
राह से आ निकले, एक इधर से और एक उधर से। जब एक दूसरे के साम
आये तब बड़ी कठिनाई में पड़ गये। न कोई मुड़ कर लौट सकता था और
दूसरे के पास से आगे निकल सकता था। एक ओर ऊँचा पहाड़ रोकता था औ
दूसरी ओर नदी का भय था कि पैर फिसलते ही नदी में गिर जावेंगे। तब उ
में से एक बकरा राह में लेट गया और दूसरा धीरे धीरे उस पर पाँव रख
उतर गया। अब जो लेटा हुआ था उसके लिए मार्ग साफ हो गया। जाना
उठ कर चला गया। मेल जोल से दोनों ने अपनी जान बचा ली।

(१४)

पुरा हस्तिनाम्नि नगरे महमदनामा यवनेश्वरो बभूव। तस्मिन्न
समुद्र धरणीतलं प्रशासति तदुत्कर्षासहिष्णुः काफरनरपतिस्तमभि
योद्धुं सकलबलसहितस्तत्राजगाम। यवनेश्वरस्तमायान्तं दृष्ट्वा

ससैन्यः पुराद् बहिर्भूय तेन सममयुध्यत । तयोर्युद्धे समारब्धे महीयसा काफरसैन्येन हन्यमाना महनदयोधाः पलायिताः । ततः पलायमानं स्वबलं दृष्ट्वा यवनेश्वर उवाच—'रे रे मम सैन्यसुभटाः ! युष्माकं मध्ये कोऽप्येतादृशो नास्ति य इदानीं रिपुमेनं पलायमानायां मे सेनायां गतिं निरुन्ध्यात्' यवनराजवचनं श्रुत्वा तेषां मध्ये द्वौ राजकुमारावूचतुः-'महाराज ! अलं विषादेन । अधुनैवावां भवतो रिपुं खड्ग-प्रहारैश्छिन्नशिरसं करवाव' । यवनेश्वर उवाच—'साधु कुमारौ ! युवाभ्यामन्यः क एव कर्तुं क्षमः ? नाथ विलम्बस्य कालः । अधुनैव विपक्षपक्षं प्रविश्य असिप्रहारे हस्तलाघवं दर्शयतम् । अहमपि भवद्‌नन्तरं स्वबलमपि गृहीत्वा भवत्साहाय्याय प्रस्तुत एव' ।

हरिद्वार हिन्दुओं का परमपवित्र तीर्थ है । ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में इसकी बहुत महिमा गाई गई है । मनु जी का कथन है कि—'यदि तुम अपने हृदय में अन्तर्यामी को साक्षी मानते हो तो पुनः असत्य भाषण से होने वाले पाप की शुद्धि के लिए गङ्गा पार जाने की कोई आवश्यकता नहीं' ।

जो लोग शास्त्रोक्त विधि के अनुसार श्रद्धाभक्तिपूर्वक उक्त तीर्थ का सेवन करते हैं वे ही उचित फल प्राप्त कर सकते हैं, अन्य नहीं । प्रत्युत, तीर्थ पर निषिद्ध आचरण करने वालों को भयङ्कर नारकी गति मिलती है ।

(१५)

'भो. पक्षिण ! केन किं किं कौतुकं दृष्टम् ?' एकेन पक्षिणोक्तम्—चम्पायां नगर्यां जितशत्रुर्नाम महीपतिः । तस्य पुत्री पुष्पवती नाम । दैवयोगात् पुनर्भवकर्मवशात् सा नयनविकला जाता । पाणिग्रहणयोग्या पितुर्मनसि सा शोकशल्य वर्तते। अन्यदा राज्ञा नगरीमध्ये पटहो दापितः । 'यः कश्चित् जितशत्रोः पुत्र्याः पुष्पवत्याः लोचने औषधयत्नेन मन्त्रयत्नेन वा नीरुजे करोति, राजा तस्मै निजराज्यस्य अर्धं कन्याञ्च दास्यति' 'एकेन लघुपक्षिणा वृद्धपक्षी पृष्टः—'तात ! उपायः कोऽप्यस्ति ? येनोपायेन तस्या नेत्रे पुनर्नवे भवतः' ।

रश्मिश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत् ।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥

विचारशील मनुष्यों से ऐसा सुना जाता है कि कविता और मानवजाति का अनादि सम्बन्ध चला आता है। मनुष्य के बिना अन्य कोई प्राणी कविता के रचने या सुनने में समर्थ नहीं। मनुष्यों में भी कोई सहृदय पुरुष ही उसके मर्म को जान सकता है। कविता ज्ञान से रहित मनुष्य पशुवत् होते हैं। संसार की ऐसी कोई भाषा नहीं जिसमें कुछ न कुछ कविता न पाई जाय। सङ्गीत भी कविता का सखा है। सङ्गीत कविताप्रेम का बड़ा भारी सहायक है और प्रेम ही सृष्टि का मूलमन्त्र है। आजकल के नवशिक्षित युवकों में से कई एक अपनी मातृभाषा की कविता से घृणा करते हैं। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वे कविता के मर्मज्ञ तथा मातृभाषा के स्नेही नहीं।

(१६)

दूतवचनं श्रुत्वा दशनाग्रैः ओष्ठौ कृन्तन् कदम्बराजः दूतं प्रति प्राह 'रे दूत! तव स्वामी किं बालोऽथवा किं प्रमत्तोऽथवा वातग्रस्त:? यः सकलशत्रुहन्तारं मां न जानाति! अथवा किं तस्य गुणदोषविचारज्ञा केऽपि मन्त्रिणो न सन्ति? ये एवम् असमं जल्पन् नलो न निषिद्धः! अहो दूत! गच्छ, यदि तव स्वामी जीवितस्य अतीव निर्विण्ण:, ततः सङ्ग्रामाय सज्जो भूत्वा त्वरितम् आगच्छतु। अहमपि सज्जीभूय स्थितोऽस्मि।' ततो दूतेनापि आगत्य कदम्बोक्त कथितं नलस्याग्रे। तत: कोपारुणितलोचनश्चतुरङ्गसेनायुक्तो नलराजश्चचाल। क्रमेण प्राप्तस्तद् सिमाम्।

पिछले समय में एक क्षत्रिय राजा था, जो संसार में विख्यात था। उसका नाम गाधि था। उसका लड़का विश्वामित्र था। गाधि ने विश्वामित्र को सब प्रकार की शिक्षा दी और जब वह जवान हो गया तब उसे राज्य दे दिया और उसने खुद अपना शरीर योगबल से त्याग दिया। जब विश्वामित्र राजा बने तब उसने देखा कि राक्षसों ने उसकी प्रजा को अत्यन्त पीड़ित कर रक्खा है। इन राक्षसों को मारने के लिए उसने एक बड़ी सेना अपने साथ ली और एक वन से दूसरे वन में जाकर बहुत से राक्षसों का नाश कर दिया। इसी तरह वह चलते चलते वसिष्ठ के आश्रम के पास पहुँचा। उसके सैनिकों ने वहाँ ठहर कर और वन को काटकर बहुत से घर बना लिये। वसिष्ठ ने इससे क्रुद्ध होकर अपनी कामधेनु को आज्ञा दी कि शबरों की एक सेना उत्पन्न करो।

(१७)

(क) क्रमेण ध्वान्तं गाढतरं जातम् । अश्रुभिः कपोलौ क्षालयन् स समचिन्तयत्, यन्मया पथि एवैषा रजनी यापनीयेति । अथ स उच्चैः रोदितुमुपचक्रमे । तमेव मार्गमतिक्रामता दयालुना केनचिन्निषादितो दुःखकारणं पृष्टश्चासौ बालकस्तस्मै सर्वं निवेदितवान् । अथ सञ्जातकृपेण तेन दयावताऽसौ निर्विघ्नं स्वगृहं प्रापितः ।

(ख) कश्चिद्रासभः सिंहचर्मैकमासाद्य परिहितवान् । अथ स क्षेत्रेषु गत्वा यानि सस्यानि अवलोकयामास, तेषां भयोत्पादनेन आनन्दं लेभे । अथ जम्बुकमवलोक्य तमपि त्रासयितुं चेष्टते स्म । जम्बुकस्तु तस्य दीर्घौ कर्णौ उन्नतावलोक्य, स्वरमाकर्ण्य च कोऽसाविति तत्त्वणादेव ज्ञातवान् । आह च—'अहो ! यद्यहं त्वां शब्दायमानं नाश्रोष्यम् तदाऽहमप्यभेष्य'मिति ।

कामधेनु ने उसी क्षण एक शबरसेना उत्पन्न कर दी जिसने विश्वामित्र के सारे सैनिकों को भगा दिया । विश्वामित्र, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ का यह अद्भुत बल देखकर चकित रह गया । उसी समय से ब्रह्मर्षि बनने के लिये उसने तप करना शुरू कर दिया । बहुत काल तप करने के बाद वह ब्रह्मर्षि पद को पहुँच गया और सारे जगत् में देवता के समान भ्रमण करने लगा ।

मैं कल ही कलकत्ते से लौट कर आया हूँ ।

महात्मा परोपकार के लिए तन, मन, धन अर्पण कर देते हैं ।

जैसे पहाड़ पृथिवी को धारण करते है, वैसे ही राजा प्रजा का पालन करते है ।

किसी साधु ने कुत्ते से पूछा—'तू रास्ते में क्यों सोता है ?' उसने जवाब दिया—'मैं भले बुरे की परीक्षा करता हूँ' ।

इस विषय में तुम्हें कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए ।

माता पिता की सेवा करो । फल पाओगे ।

(१८)

(क) एकदा तमसाच्छन्नायां निशायां नृपतिः करुणं परिदेवितमशृणोत् । तदा हि स्वभृत्यानाहूय 'रुदितस्य कारणं निर्णयतेत्याज्ञापयामास । अथ तेषामेकतमः शब्दानुसारेण तत् स्थानं गत्वा सुन्दरीं

युवतीमेकामवलोकयामास। अथ सोवाच—'अहं हि नृपतेरस्य राज्य लक्ष्मी। साम्प्रतं मयायं स्वक्तव्यः, अतो दुःखितास्मी'ति।

(ग) स हि विद्यया देवगुरुरिव, तेजस्वितया सूर्य इव, धैर्येण जननी धरित्रीव, तथा साहसेन इन्द्र इव वर्तते। स हि सत्यपरायणो महात्मा च। वदान्यो विनीतश्च जितेन्द्रियः सर्वेषामेव प्राणिनां प्रियः। धर्ममार्गचारी साधुसर्गवान् साधुरिव पवित्रहृदयो धर्मात्मा च। किन्त्वहो! इतः संवत्सरात् स मरिष्यति। एव हि तस्य नियतिः।

सूर्यवंश में दिलीप नामक एक विख्यात राजा था। वह प्रजापालन में सदैव रत रहता था और सब शुभ गुणों से अलङ्कृत था, परन्तु पुत्र के अभाव से सदा उसका हृदय दुःखी रहता था। एक समय वह पत्नी सहित अपने गुरु वसिष्ठ के आश्रम को गया गया और प्रणाम करके उनसे बोला—'हे भगवन्! मुझसे क्या हुआ कि मैं पुत्रविहीन हूँ'। वसिष्ठ ने विचार कर कहा—'हे पुत्र! नन्दिनी नामक मेरी गाय की सेवा कर। उसके प्रसन्न होने पर तुझे पुत्र उत्पन्न होगा'। गुरु से ऐसा सुनकर यह राजा नन्दिनी के पास गया और उनकी सेवा करने लगा।

एक बार नन्दिनी राजा सहित हिमालय की गुफा में चली गई और वहाँ एक सिंह ने उसे पकड़ लिया। राजा ने तीर निकालना चाहा परन्तु उसका हाथ शिथिल हो गया। सिंह ने हँस कर राजा से कहा—'हे राजन्! तेरे तीर से मैं नहीं मर सकता। मेरे भोजन के लिए यह गाय मेरे पास आई है। मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। राजा ने कहा—हे सिंह! गायको छोड़ दे और मुझे खा ले'।

(१९)

एकदा गुर्जरदेशीयः कश्चित् कविः कवित्वमलं काशिराज द्रष्टु काशिदेशमगच्छत्। गत्वा च तत्र राजभवनं प्रविविक्षुर्द्वाःस्थेन दौवारिकेणान्तः प्रवेशात् न्यरुध्यत। सप्रश्रयमनुनीयमानः स दौवारिकः 'यदि त्वमन्तः प्रवेष्टुमिच्छसि तर्हि मह्यं यत् किञ्चिद्देहि। अन्यथा दुर्लभस्ते प्रवेशः' इत्यवोचत्। एतच्छ्रुत्वा कविः प्रत्यवदत् 'भद्र! अधुना त्वहमकिञ्चन, मत्पार्श्वे वराटिकापि न विद्यते। किन्तु राज्ञः सकाशात् यदि मे किञ्चिदपि लभेय तस्यार्धं ते दास्यामि'। तद्वचः श्रुत्वा स द्वारपालको हृष्टस्तस्मै प्रवेशायाऽनुज्ञामदत्त।

ततः कोष्ठान्तरं प्रविशन् सोऽन्येन द्वारपालकेन तथैव निवारितः। तस्मै अपि 'राज्ञः सकाशाल्लभ्यमानस्यार्धं दास्यामो'ति प्रतिज्ञाय स कविस्तेनानुमतः कथञ्चित्-राज्ञः सविधं प्राप्नोत्। प्राप्य च तत्रात्मनः कवितानिर्माणचातुर्यं कतिपयैः सरसैः पद्यै राजानमस्तौत्। तेन प्रीतो नरपतिस्तं सत्कृत्य तस्मै वारणमेकं दापयितुं मन्त्रिणमादिशत्।

ब्रह्मारण्य में एक कर्पूरतिलक नामक हाथी रहता था। उसको देखकर उस वन के रहने वाले गीदड़ों ने सोचा कि यदि यह मर जाने तो इसकी देह से हमारे लिए चार महिने का भोजन हो जायगा। उनमें से एक बूढ़े गीदड़ ने प्रतिज्ञा की कि—'मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से इसको मार डालूँगा'। यह कह कर वह धूर्त कर्पूरतिलक के पास गया और साष्टाङ्ग प्रणाम कर बोला कि 'हे देव! जरा इधर ध्यान दीजिये'। हाथी ने कहा 'तू कौन है? और कहाँ से आया है!' उसने कहा—'मैं गीदड़ हूँ और इस वन के रहने वाले सबने मुझे आप के पास भेजा है और कहा है कि—'बिना राजा के रहना ठीक नहीं, इस वन का राज्य करने के लिए आप में सब राजोचित गुण मौजूद हैं, इसलिए प्रार्थना है कि जल्दी से आप आ जायँ कि लग्नवेला न टल जाय'। यह कह गीदड़ उठकर चला और हाथी उसके पीछे पीछे चलने लगा। रास्ते में वह बड़े कीचड़ में फँस गया। कीचड़ में फँसकर हाथी ने कहा 'मित्र गीदड़! अब मैं क्या करूँ, मैं तो मरा जाता हूँ'। गीदड़ ने हँसकर कहा—'हे देव! मेरी दुम पकड़ कर ऊपर आ, तूने मेरी बात का विश्वास किया इसलिए दुःख भोगा'।

(२०)

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नामाऽरण्यानी। तस्यां चिरान्महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः केनचिच्छृगालेनावलोकितः। तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत्-'आः! कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि। भवतु, विश्वासं तावदुत्पादयामि'। इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत्-'मित्र! कुशलं ते?' मृगेणोक्तम्-'कस्त्वम्?' स ब्रूते-'क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बूकोऽहम्, अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवन्निवसामि। इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुनः सबन्धुर्जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि। अधुना तवानुचरेण मया सर्वथा भवितव्यमिति। मृगेणोक्तम्-'एवमस्तु

ततः पश्चादस्तङ्गते भगवति भास्करे तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ। त
चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति।

किसी राजा का मन्त्री बड़ा चतुर और सुशील था। वह सबका हित चाह
वाला था। वह वैरी की भी निन्दा नहीं करता था। एक समय किसी कारण
राजा ने उससे क्रुद्ध होकर उसे कारागार में डाल दिया। उसकी सज्जनता औ
होशियारी दूर दूर तक विख्यात थी। इसी कारण किसी समीप के राजा ने उ
लिखा कि—'आप जैसे बुद्धिमान् के अनादर को सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ
आपके स्वामी ने आपके गुण न पहचाने। यदि आप मेरा राज्य अपने चातुर्य
सुशोभित करें तो मैं आपका बड़ा सत्कार करूँगा'। मन्त्री यह पत्र पढ़कर
क्षण चुप रहा, फिर उसने उत्तर लिख कर दूत को दे दिया। इसी समय कि
मनुष्य ने राजा के पास जाकर कहा—'महाराज का मन्त्री कारागार में पड़ा हु
भी गुप्त पत्र द्वारा अन्य राजाओं से सन्धि करता है। अभी उसने समीप के रा
के पास दूत भेजा है।'

(२१)

तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत्-'सखे! कोऽयं द्वितीयः?' मृगो ब्रूते-'जम्
कोऽयमस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः'। काको ब्रूते—'अकस्मादागन्तुना स
मैत्री न युक्ता'। जम्बूक आह—'मृगस्य प्रथमदर्शने भवानप्यज्ञातः
शलशील एव। तत्कथं भवता सहैतस्य स्नेहानुवृत्तिरुत्तरोत्तरं वर्धते
यथाऽयं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि'। मृगोऽब्रवीत्-'किमनेनोत्तरेण
सर्वैरेकत्र विस्रम्भालापैः सुखिभिः स्थीयताम्'। 'काकेनोक्तम्—एव
मस्तु'। अथ प्रातः सर्वे यथाभिमतं देशं गताः। एकदा निभृतं शृगाल
ब्रूते-सखे! अस्मिन् वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति। तदहं त्वां नीत्व
दर्शयिष्यामि। तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति
अथ क्षेत्रपतिना क्षेत्रं दृष्ट्वा पाशो योजितः। अनन्तरं पुनरागतो मृग
पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत् को मामितः कालपाशादिव व्याधपाशात् त्रा
समर्थो मित्रादन्यः?

यह सुनकर राजा ने तुरन्त ही रक्षकों को भेजा। वे उस दूत को बाँधकर शी
ही ले आये। उसके हाथ से पत्र लेकर राजा ने पढ़ा—'महाराज! मैं ऐसी प्रशं

के योग्य कदापि नहीं हूँ जैसी आपने मेरी की है। वस्तुत मैं गुणहीन ही हूँ। आप केवल अपने अनुग्रह से मुझे ऐसा समझते हैं। बचपन ही से मेरा इस राजकुल में पोषण हुआ है और अपने स्वामी के अनुग्रह से मैंने इतना यश प्राप्त किया है। अब थोड़े से विरोध से मैं अपने उपकार करने वाले स्वामी की न निन्दा कर सकता हूँ और न उन्हें छोड़ सकता हूँ। यह पत्र पढ़कर राजा ने उसी समय मन्त्री को बन्धन रहित कर दिया और उसकी पहली ही सी प्रतिष्ठा की।

(२२)

अस्त्युत्तरापथे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पिप्पलवृक्षः। तत्रानेकबका निवसन्ति। तस्य वृक्षस्य विवरे सर्पो बालापत्यानि खादति। अथ शोकार्तानां बकानां विलापं श्रुत्वा केनचिद् बकेनाभिहितम्—'विलापो न कार्यः। यूयं मत्स्यानुपादाय नकुलविवरादारभ्य सर्पविवरं यावत् पङ्क्तिक्रमेण विकिरत। ततस्तदाहारलुब्धैर्नकुलैरागत्य सर्पो द्रष्टव्यः स्वभाववैराद्धन्तव्यश्च'। तथानुष्ठिते तद्वृत्तम्। ततस्तत्र वृक्षे नकुलैर्बकशावकानां विरावः श्रुतः। पश्चात्ते वृक्षमारुह्य बकशावकान् खादन्ति स्म। अत उच्यते—

उपायं चिन्तयन् प्राज्ञो ह्यपायमपि चिन्तयेत्।
पश्यतो बकमूर्खस्य नकुलेन हता बकाः॥

विदर्भदेश में धर्मबन्धु नामक एक विख्यात राजा था जो सदैव प्रजा के हित के लिए यत्न करता रहता था। उसने स्थल में बावड़ी, तालाब आदि खुदवा दिये कि अनावृष्टि के समय उपयोगी हों। प्रजा की शिक्षा के लिए प्रत्येक ग्राम में पाठशालाएं खोल दीं कि बालक और बालिका दोनों पढ़ें। एक समय उसके राज्य में ढुण्ढा नाम की एक महाराक्षसी आई। उसने प्रजा के बालक और युवकों का नाश करना प्रारम्भ कर दिया। प्रजा ने बहुत यत्न किया कि किसी उपाय से इस दुष्ट राक्षसी को मारें। परन्तु उनके सब उपाय निष्फल रहे। अन्त में अत्यन्त दुःखी हो उन्होंने अपने दयालु राजा के पास जाकर विनयपूर्वक निवेदन किया कि—'राजन्! प्रतिदिन हमारे बालक और युवक मौत के घाट उतर रहे हैं, पर यह ढुण्ढा राक्षसी नष्ट नहीं होती'। राजा बहुत चिन्ताकुल हुआ पर कोई उपाय उसके नाश का उसकी समझ में न आया।

(२३)

अस्ति गौतमस्य महर्षेस्तपोवने महातपा नाम मुनिः। तेन मुनिना काकेन नीयमानो मूषिकशावको दृष्टः। ततो दयया तेन मुनिना स शावकः काकान्मोचितो नीवारकणैः संवर्धितश्च। ततो बिडालस्तं मूषिकं खादितुमनुधावति। तमवलोक्य मूषिकस्तस्य मुनेः क्रोडं प्राविशत्। ततो मुनिनोक्तम्—'मूषिक! त्वं मार्जारो भव'। ततः स बिडालः कुक्कुरं दृष्ट्वा पलायते। ततो मुनिनोक्तम्-'कुक्कुराद् भीतोऽसि त्वमेव कुक्कुरो भव'। स च पुनः कुक्कुरो व्याघ्राद्भीतो भवति। ततस्तेन मुनिना कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः। अथ तं व्याघ्रं मुनिर्मूषिकोऽयमिति पश्यति। अथ तं मुनिं दृष्ट्वा व्याघ्रं च सर्वे वदन्त्यनेन मुनिना मूषिको व्याघ्रतां नीतः। एतन्निशम्य स व्याघ्रोऽचिन्तयत्-यावदनेन मुनिना स्थातव्यं तावन्ममैपाऽपकीर्तिर्नापगच्छति। इति मत्वा व्याघ्रस्तं मुनिं हन्तुं गतः। ततो मुनिना तज्ज्ञात्वोक्तम्—'पुनर्मूषिको भवे'ति एव स व्याघ्रो मूषिकः कृतः।

निषध देश का राजा नल एक बार वन-विहार को निकला। नगर से कुछ दूर निकल जाने पर एक उपवन में उसने एक मनोहर तालाब देखा। उसमें लाल कमल खिले हुए थे, मछलियाँ खेल रही थीं और अनेक प्रकार के जलपक्षी क्रीड़ा कर रहे थे। वहाँ पर उसने एक बहुत ही मनोहर हंस देखा। राजा को वह ऐसा लगा कि उसने उसे पकड़ना चाहा। इसलिए उसने अपने तरकश से एक सम्मोहन बाण उस पर चलाने के लिए निकला। उसने बाण धनुष पर रक्खा ही था कि एक अलक्षित प्राणी उसने सुनी। उसका भाव यह था कि—'हे राजन्! इस पर बाण मत छोड़। यह तेरा अभीष्ट सिद्ध करेगा। यह तुझे तेरे हो समान गुणवती त्रिभुवनमोहिनी राजकन्या प्राप्त करावेगा। उसे तू अपनी रानी बनाना'।

(२४)

अस्ति कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे चटकदम्पती तमालतरौ निलयं निर्माय प्रतिवसतः स्म। अथ तयोर्गच्छता कालेन सन्ततिरभवत्। अन्यस्मिन्नहनि प्रमत्तो वनगजः कश्चित्तं तमालवृक्षं घर्मार्त्तश्छायार्थी समाश्रितः। ततो मदाधिक्यात्तां तस्य शाखां चटकाश्रितां पुष्कराग्रेणाकृष्य बभञ्ज।

तस्या भङ्गेन चटकाण्डानि सर्वाणि विशीर्णानि। आयुःशेषतया च चटकौ कथमपि प्राणैर्न वियुक्तौ। अथ चटका स्वाण्डभङ्गात् दुःखाभिभूता प्रलापान् कुर्वाणा न किञ्चित्सुखमाससाद। अत्रान्तरे तस्यास्तान् प्रलापान् श्रुत्वा काष्ठकूटो नाम पक्षी तस्याः परमसुहृत् तद्दुःखितोऽभ्येत्य तामुवाच—'भगवति! किं वृथा प्रलापेन?' चटका प्राह 'अस्त्वेतत्। परं दुष्टगजेन मदान्मम सन्तानक्षयः कृतः। यदि मम त्वं सुहृत् सत्यः, तदस्य गजापसदस्य कोऽपि वधोपायश्चिन्त्यतां यस्यानुष्ठानेन मे सन्ततिनाशदुःखमपसरेत्'।

एक दिन एक राजा अपने मन्त्री और नौकर के साथ घूमते घूमते एक वन में जा पहुँचा। राजा ने प्यास से व्याकुल हो नौकर से कहा—'जल लाओ'। सामने एक कुटी थी। वहाँ एक अन्धा तपस्वी कुए पर बैठा था। उसे देख कर नौकर बोला—'अरे अन्धे! हमें पानी दो'। यह वचन सुनकर वह तपस्वी बोला—'यहाँ से दूर हो जा। मैं नीच को पानी नहीं दूँगा'। नौकर राजा के पास आया और बोला—'अन्धा पानी नहीं देता'। तब मन्त्री ने जाकर कहा—'भाई अन्धे! थोड़ासा जल दो'। उस तपस्वी ने उत्तर दिया—'आप राजा के मन्त्री हैं तो मुझे क्या? मैं जल नहीं देता'। मन्त्री के लौट आने पर राजा स्वयं गया और उसने मधुर वचनों से प्रार्थना की—'महात्मा जी, मुझे बहुत प्यास लगी है, कृपया थोड़ासा जल दीजिये'। वह बोला—'राजन्! आप बैठ जाइये, मैं अभी जल देता हूँ'। राजा ने आश्चर्य से कहा—'महात्मा जी जल तो मैं पीछे पीऊँगा। पहले यह बताइये कि आप देख तो सकते नहीं, तब आपने कैसे जान लिया कि पहला आदमी नौकर था और दूसरा मन्त्री'। तपस्वी ने उत्तर दिया 'मैंने यह सब कुछ वाणी से जान लिया। केवल आपके ही वचन सादर और सत्कारपूर्ण थे, जिनसे आप की योग्यता और कुलीनता प्रकट होती थी'।

(२५)

काष्ठकूट आह—'भगवति! सम्यगभिहितं भवत्या। यत् पश्य मे बुद्धिप्रभावम्। परं ममापि सुहृद्भूता वीणारवा नाम मक्षिकास्ति। तत्तामाहूयागच्छामि, येन स दुरात्मा दुष्टगजो वध्यते'। अथासौ चटकया सह मक्षिकामासाद्य प्रोवाच—'भद्रे! ममेष्टेयं चटका केनचिद् दुष्टगजेन पराभूताऽण्डस्फोटनेन। तत्तस्य वधोपायमनुतिष्ठतो मे साहा-

-स्य कर्तुमर्हसि' । मक्षिकाप्याह--'भद्रे ! किमुच्यतेऽत्र विषये। पर ममापि मेको मेघनादो नाम मित्र तिष्ठति । तमप्याहूय यथोचित कुर्मः' ।

अथ ते त्रयोऽपि गत्वा मेघनादस्याग्रे समस्तमपि वृत्तान्तं निवेद तस्थु. । अथ स प्रोवाच—'कियन्मात्रोऽसौ वराको गजो महाजनस्य -कुपितस्याग्रे तन्मदीयो मन्त्र. कर्तव्यः' ।

अपना कर्तव्य प्रसन्नता से करो । उसके करने में उदास या निराश मत हो। अपने कार्यको मनोरञ्जक बनाओ । इस प्रकार वह कार्य आसानी से सिद्ध होगा। कुछ न कुछ कार्य करते रहो । किसी उद्देश्य को हृदय में रक्खो । इसी में जीवन -का आनन्द है । अनेक मनुष्य अपने आनन्द के समय को भी मिथ्या भय और निर्मूल चिन्ताओं में व्यतीत करते हैं। मिथ्या कल्पनाओं से दूर रहो और सदैव शुभ कार्यों के करने में प्रवृत्त रहो । बुद्धिमान् पुरुष के लिए प्रत्येक स्थान स्वदेश है और शान्तचित्तवाले के लिये प्रत्येक स्थान उसका प्रासाद है ।

जो धर्मात्मा हैं वे शरणागत का त्याग नहीं करते। विपत्ति में भी धर्म में -दृढ रहते हैं। इसी कारण उनका यश वृद्धि पाता है। बड़ों का निरादर करने से मनुष्य नीच दशा को प्राप्त हो जाता है और कष्ट भोगता है। विद्वान् चाहे बालक हो अथवा कुरूप, सदैव आदर के योग्य है। परन्तु विद्वान् को अपनी विद्या का अहङ्कार कभी न करना चाहिए। पढ़ी हुई विद्या सफल हो अथवा निष्फल अधर्माचरण तो कभी भी उचित नहीं ।

(२६)

कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म । अथासौ वीर्यातिरेकात् नित्यमेव अनेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयन्नोपरराम। अथान्येद्युस्तद्वनजाः सर्वे पशवो मिलित्वा तमभ्युपेत्य प्रोचुः—'स्वामिन्! किमनेन सकलमृगवधेन नित्यमेव, यतस्तवैकेनापि मृगेण तृप्तिर्भवति। -तत् क्रियतामस्माभिः सह समयधर्मः । अद्यप्रभृति तवात्रोपविष्टस्य जातिक्रमेण प्रतिदिनमेको मृगो भक्षणार्थं समेष्यति। एव कृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेश विनापि भविष्यति, अस्माक सर्वोच्छेदन न स्यात्। तदेष राजधर्मोऽनुष्ठीयताम्' । अथ तेषा तद्वचनमाकर्ण्य भासुरक आह—'अहो ! सत्यमभिहित भवद्भिः। पर यदि ममोपविष्ट-

ग्यात्र नित्यमेव नैक आपद्‌ समागमिष्यति तन्नून सर्वानपि भक्षयि-
ष्यामि'। अथ ते तथैव प्रतिज्ञाय सुखिनस्तत्रैव वने निर्भयाः पर्य-
टन्ति। एकश्च प्रतिदिनं तेषां मध्यात्—तस्य भोजनार्थं मध्याह्नसमये
क्रमेणोपतिष्ठते।

सूर्य की किरणों से व्याकुल होकर दो कुत्ते एक वृक्ष की छाया में बैठ गये और बातचीत करने लगे। एक ने कहा—'भाई! संसार में मूर्खलोग व्यर्थ ही लड़ते और दुःखित होते हैं'। दूसरे ने उत्तर दिया—'मित्र! तुम सत्य कहते हो। कलह करना अनुचित है। सदा सब से प्रेम के साथ रहना चाहिए। इस प्रकार जगत् में आनन्द की वृद्धि होगी और दुःख का नाश होगा। आओ, हम दोनों प्रतिज्ञा करें कि परस्पर कलह कभी न करेंगे'। तब दोनों ने परमात्मा का ध्यान कर उक्त प्रकार से प्रतिज्ञा की। उसी समय मांस का एक टुकड़ा ऊपर से उनके सामने गिरा। दोनों कुत्ते उसे देखकर दौड़े। क्योंकि दोनों ही मांस को खाना चाहते थे, इसलिए उनमें लड़ाई होने लगी। यहाँ तक कि दोनों के शरीर खून से सन गये। एक कौवा उनकी यह दशा देखकर वृक्ष से उड़ा और मांस का टुकड़ा चोंच से पकड़ कर ले गया। संसार में मित्रता उसी समय तक रहती है जब तक स्वार्थ नहीं होता। स्वार्थ होनेपर स्नेह और मित्रता का नाश हो जाता है।

(२७)

आसीत् कुसुमपुरे नन्दो नाम राजा। तस्य कायस्थः शकटारो नाम मन्त्री बभूव। स च केनाप्यपराधेन सर्वस्वं गृहीत्वा सपुत्रकलत्रो राज्ञा कारागृहे निक्षिप्तः। तत्रापि तस्मै सपरिवारायैकशरावपरिमिता एव सक्तवः प्रतिदिनं भक्ष्यत्वेन दीयन्ते। तद्—दृष्ट्वा तेन शकटारेण परिवारेष्वभिहितम्—'यदयं राजा करालहृदयो विनाऽपराधेनास्मान् दुःखं दत्त्वा तापयति। शरावमात्रैः सक्तुभिः सर्वेषामस्माकमाहार-सिद्धिर्न सम्भवत्येव। ततः स खादतु सक्तुशरावं योऽस्य प्रत्युद्धारे समर्थो भवति'। परिवारैरुक्तम्—'यदि भवान् जीवति तदैतस्य वैरस्य परिवारसंहारसम्भवस्य प्रत्युद्धारः सम्भवति'। ततः स कलत्रपरिवाराणां परामर्शेन शकटार एव तदन्नं खादित्वा स्वकीयजीवनं रक्षितवान्। परिवारस्तस्य मृत एव।

व्य कर्तुमर्हसि'। मक्षिकाप्याह–'भद्रे! किमुच्यतेऽत्र विषये। परं ममाभि
भेको मेघनादो नाम मित्र तिष्ठति। तमप्याहूय यथोचित कुर्मः'।
अथ ते त्रयोऽपि गत्वा मेघनादस्याग्रे समस्तमपि वृत्तान्त निवे
दयामासुः। अथ स प्रोवाच—'कियन्मात्रोऽसौ वराको गजो महाजनस्य
कुपितस्याग्रे तन्मदीयो मन्त्रः कर्तव्य'।

अपना कर्तव्य प्रसन्नता से करो। उसके करने में उदास वा निराश मत हो।
अपने कार्यको मनोरञ्जक बनाओ। इस प्रकार वह कार्य आसानी से सिद्ध होगा।
कुछ न कुछ कार्य करते रहो। किसी उद्देश्य को हृदय में रक्खो। इसी में जीवन
का आनन्द है। अनेक मनुष्य अपने आनन्द के समय को भी मिथ्या भय और
निर्मूल चिन्ताओं में व्यतीत करते हैं। मिथ्या कल्पनाओं से दूर रहो और सदैव
शुभ कार्यों के करने में प्रवृत्त रहो। बुद्धिमान् पुरुष के लिए प्रत्येक स्थान स्वदेश
है और शान्तचित्तवाले के लिये प्रत्येक स्थान उसका प्रासाद है।

जो धर्मात्मा हैं वे शरणागत का त्याग नहीं करते। विपत्ति में भी धर्म में
दृढ रहते हैं। इसी कारण उनका यश वृद्धि पाता है। बड़ों का निरादर करने से
मनुष्य नीच दशा को प्राप्त हो जाता है और कष्ट भोगता है। विद्वान् चाहे
बालक हो अथवा कुरूप, सदैव आदर के योग्य है। परन्तु विद्वान् को अपनी
विद्या का अहङ्कार कभी न करना चाहिए। पढी हुई विद्या सफल हो अथवा
निष्फल अधर्माचरण तो कभी भी उचित नहीं।

(२६)

कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म। अथासौ वीर्या
तिरेकात् नित्यमेव अनेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयन्नोपरराम। अथा
न्येद्युस्तद्वनजाः सर्वे पशवो मिलित्वा तमभ्युपेत्य प्रोचु.—'स्वामिन्!
किमनेन सकलमृगवधेन नित्यमेव, यतस्तवैकेनापि मृगेण तृप्तिर्भवति।
तत् क्रियतामस्माभिः सह समयधर्मः। अद्यप्रभृति तवात्रोपविष्टस्य
जातिक्रमेण प्रतिदिनमेको मृगो भक्षणार्थं समेष्यति। एवं कृते तव
तावत् प्राणयात्रा क्लेशं विनापि भविष्यति, अस्माकं सर्वोच्छेदन न
स्यात्। तदेष राजधर्मोऽनुष्ठीयताम्'। अथ तेषां तद्वचनमाकर्ण्य
भासुरक आह—'अहो! सत्यमभिहितं भवद्भिः। परं यदि ममोपविष्ट-

फल मिलता है? सत्य के पालन से क्या लाभ और असत्य के आचरण से कैसी हानि होती है?

प्यारे बालकों! परमपवित्र रामायण का पढ़ना और उसके अनुसार सुनीति का वर्ताव करना, तुम्हारे लिए परमहितकारी होगा और तुम अपनी संसारयात्रा का निर्वाह सुख से कर सकोगे।

(२६)

सर्पः—कथय कस्मात्ते परिभवः?

गङ्गदत्त—दायादेभ्यः।

स०—क ते आश्रयो वाप्यां कूपे तडागे ह्रदे वा? तत् कथय स्वाश्रयम्।

ग—पाषाणचयनिबद्धे कूपे ममाश्रयः।

स०—अहो! अपदा वयम्। तन्नास्ति तत्र मे प्रवेशः। प्रविष्टस्य च स्थानं नास्ति, यत्र स्थितः तव दायादान् व्यापादयामि। तद्गम्यताम्।

ग०—भोः! समागच्छ त्वम्। अहं सुखोपायेन तत्र तव प्रवेशं कारयिष्यामि, तथा तस्य मध्ये जलोपान्ते रम्यतरं कोटरमस्ति यत्र स्थितस्त्वं लीलया मे दायादान् व्यापादयिष्यसि।

तच्छ्रुत्वा सर्पो व्यचिन्तयत्—'अहं तावत् परिणतवयाः कदाचित् कथञ्चित् मूषिकमेकं प्राप्नोमि। तत्सुखावहो जीवनोपायोऽयमनेन कुलाङ्गारेण मे दर्शितः। तद् गत्वा तान् मण्डूकान् भक्षयामी'ति। एवं विचिन्त्य तमाह—'भो गङ्गदत्त! यथेव तदग्रे भव, येन गच्छाव'।

उस पर्वत की कन्दरा में सिंह रहता था। उसी कन्दरा में एक बिल था जिसमें एक चूहा रहता था। जब सिंह सोता तब चूहा बाहर आकर सिंह के बाल काटने लगता और जब सिंह जागता तो वह तुरंत बिल में घुस जाता। सिंह ने विचार किया कि—'इस क्षुद्र चूहे को मारने से मेरे यश में बट्टा लगेगा, अतः इस जैसा ही इसका एक शत्रु लाकर इसका नाश करना चाहिए'। यह विचार कर वह सिंह एक दिन ग्राम में गया और वहाँ से एक बिडाल ले आया। सिंह के सोने पर वह बिडाल कन्दरा के द्वार पर बैठ कर रक्षा करता था। एक दिन बिडालने वह चूहा मार डाला। तब सिंह ने विचार किया—कि 'जिस काम के लिए मैंने इस बिडाल को लाया था वह सिद्ध हो गया अब इसको यहाँ रखना व्यर्थ है'।

प्राचीन काल में सुदर्शन नामक राजा था। उसके कई पुत्र थे पर सब मूर्ख थे। वे न पढ़ सकते थे और न लिख सकते थे। राजा ने अनेक उपाय किये परन्तु सफलता न हुई। एक दिन वह मन में विचार करने लगा—'मैं मूर्ख पुत्रों को क्या करूँ? ये पढ़े लिखेंगे नहीं तो राज्य कैसे करेंगे? जब मर जाऊँगा तो इनकी क्या गति होगी'। राजा को उदासीन देख कर एक पण्डित, जिसका नाम विष्णुशर्मा था, बोला—'महाराज, मैं राजकुमारों को मास के भीतर नीति निपुण बना दूँगा। मैं इनको पुस्तक न पढ़ाऊँगा कि कथा सुनाऊँगा। गीदड़, सिंह और अन्य बन के जन्तुओं की बातें बताऊँगा कुछ जन्तु चतुर होते हैं। कुछ मूढ़ कुछ विश्वास के योग्य, कुछ धूर्त। मनुष्य भी ऐसे ही होते हैं। इस प्रकार मैं राजकुमारों को अवश्य बुद्धिमान् बना दूँगा'।

(२८)

कस्मिंश्चित्कूपे गङ्गदत्तो नाम मण्डूकराजः प्रतिवसति स्म। स कदाचिद्–दायादैरुद्वेजितोऽरघट्टघटीमारुह्य निष्क्रान्तः। अथ तेन चिन्तितं 'मया दायादानां प्रत्यपकारः कर्तव्यः' इति। एवं चिन्तयन् स बिले प्रविशन्तं कृष्णसर्पमपश्यत्। तं दृष्ट्वा भूयोऽप्यचिन्तयत्–'यदेनं तत्र कूपे नीत्वा सकलदायादानामुच्छेदं करोमि'। एवं विभाव्य बिलद्वारं गत्वा तमाहूतवान्–'एहि एहि, प्रियदर्शन! एहि'। तच्छ्रुत्वा सर्पश्चिन्तयामास–'य एष मामाह्वयति स स्वजातीयो न भवति, यतो नैषा सर्पवाणी। तदत्रैव दुर्गे स्थितस्तावद्वेद्मि कोऽयं भविष्यतीति'। आह च—'भोः! को भवान्?' स आह—'अहं गङ्गदत्तो नाम मण्डूकाधिपतिस्त्वत्सकाशे मैत्र्यर्थमागतः' तच्छ्रुत्वा सर्प आह—'भोः! अश्रद्धेयमेतत्–यत्तृणानां वह्निना सह सङ्गमः'। गङ्गदत्त आह—'सत्यमेतत् स्वभाववैरी त्वमस्माकम् परं परिभवात् प्राप्तोऽहं ते सकाशम्'।

हम सब के एक रामचरित एक निर्मल दर्पण है। इसमें हम देख सकते हैं कि—'बालकों को माता पिता की आज्ञा का किस प्रकार पालन करना चाहिए? भाइयों को आपस में किस प्रकार प्रेम रखना चाहिए? पतिव्रता स्त्री को अपने पति की सेवा कैसे करनी चाहिए? अभिमानी और हठी मनुष्यों को हठ का क्या

विचक्षणा चायसर कथितवती। शकटार उवाच—'त्वं कथयसि यन्मूत्रप्रवाहं दृष्ट्वा पश्चादश्वत्थवृक्षं पश्यन् राजा जहास। तर्हि पूर्वदृष्टस्य कस्यापि वस्तुनो न हासनिमित्तत्वम्। आ, ज्ञातम्। मूत्रप्रवाहे प्रवहदश्वत्थबीजं क्षुद्रतरं दृष्ट्वा तदद्भुतं महापरिमाणं वृक्षं पश्यन् परामृष्टवान् राजा यदहो! वैकृत्यं विधातुः प्रपञ्चस्य। क्वेदं बीजम्, क्व च तरुस्तत्सम्भव, इति हसितं भूपालेन'। पुनः पुनः परामृश्य शकटारस्तदेव निर्धारितवान् अब्रवीच्च। विचक्षणया तदेव वचनं राज्ञः पुरस्तादुक्तम्।

सदा सत्पथ का अनुसरण करो और दृढता के साथ अपने काम में लगे रहो। संसार के सभी लोग बहुत बड़े विद्वान्, दार्शनिक, आविष्कर्ता या करोड़पति नहीं बन सकते। परन्तु सभी लोग अपना जीवन प्रतिष्ठा और सुख से पूर्ण अवश्य बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि अप्रतिष्ठा और विफलता उन कामों में नहीं है, जिनको लोग छोटा अथवा तुच्छ समझते हैं, किन्तु उन कामों को अपनी पूर्णशक्ति से न करने में है। जूता सीना निन्दनीय नहीं है, निन्दनीय है मोची होकर खराब जूता सीना।

बहुत लोग कहते हैं कि उद्यम व्यर्थ है, क्योंकि प्रत्येक प्राणी सुख की प्राप्ति के लिये यत्न करता है परन्तु उसे दुःख की प्राप्ति होती है। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर चाहे जिसे सुख या दुःख का पात्र बना दे। संसार के सब प्राणी ईश्वर के वश में होकर सुख या दुःख का अनुभव करते हैं और विद्या से अविद्या का नाश होता है। प्रयत्न से विद्या की प्राप्ति होती है, इस कारण समस्त दुःखों का नाश प्रयत्न से होता है। यदि इस जगत् में सारे अनर्थों का मूल आलस्य न होता तो कौन धनवान् अथवा बलवान् न होता?

(३२)

तं दृष्ट्वा शकटार उवाच—'वटो! कस्त्वम्, किमत्र कुरुषे च?' ब्राह्मण उवाच—'चाणक्यशर्मा ब्राह्मणोऽहम्। साङ्गवेदमधीत्याऽनेन पथा विवाहार्थितया गच्छतो मम कुशाङ्कुरेण पादे क्षतं वृत्तम्। तेन क्षतेन विवाहभङ्गाऽमर्षितः प्रतिज्ञातवानस्मि यदस्याः स्थल्या कुश

(३०)

एकदा स राजा नन्दः प्रसादगृहान्मन्दस्मितं कुर्वन् बहिर्बभूव। तं हसन्तं दृष्ट्वा पानीयपरिचारिका तदानीं तत्रावस्थिता विचक्षणानाम्नी चेटी जहास। तां हसन्तीं दृष्ट्वा राजोवाच–'रे विचक्षणे! कुतो हससि?' विचक्षणोवाच–'यतो देवो हसति'। राजोवाच–'मया कुतो हस्यते?' विचक्षणोवाच–'तदहं न जानामि'। राजोवाच–'आः पापे कपटिनि! त्वयैवोक्तं यतो देवो हसति ततोऽहमपि हसामि। पुनरिदानीं त्वमेवाभिदधासि यदहं देवस्य हासकारणं न जानामि। किमेते परस्परविरोधिनी वचने कथयसि? यदि स्वहितमिच्छसि तदा कथय मे सत्वरं हासबीजम्। नो चेदधुना तव शासनं करिष्यामि।' ततो लब्धावधिः सा दासी चिन्तयामास–'यत्सुबुद्धिपरामर्शपरिच्छेद्यमेतत्। ततः सुबुद्धिकमपि पृच्छामि। सुबुद्धिषु प्रथमं गणनीयः शकटारः। तदहमेव गत्वा पृच्छामीति परामृश्य तत्र गतवती। तत्र च कारागृहद्धु खनिर्यर्तं शकटारं मिष्टान्नपाने परितोष्य प्रश्नोत्तरमपृच्छत्।

बोपदेव बाल्यावस्था में बहुत मन्दबुद्धि था। बार बार अभ्यास करने पर भी अपना पाठ याद न कर सकता था। उसने बड़े परिश्रम से व्याकरण के अनेक ग्रन्थ पढ़े परन्तु उसे ज्ञान प्राप्त न हुआ। एक दिन वह निराश हो, पाठशाला त्याग कर सरोवर के तट पर जा बैठा और विचारमग्न हो गया। थोड़ी देर बाद उसने एक युवती देखी, जिसने घड़ा जल से भरकर एक पत्थर पर रखा और वह स्नान करने लगी। स्नान करने के बाद घड़ा उठाकर वह घर को चली गई। प्रतिदिन घड़े की रगड़ से उस पत्थर में एक गड्ढा हो गया था। यह देखकर बोपदेव के हृदय में एक नवीन भाव उदित हुआ और वह प्रसन्नचित्त गुरु के पास गया और बोला—'गुरु जी! यदि प्रतिदिन घड़े की रगड़ से पत्थर में भी गड्ढा हो सकता है तो अवश्य निरन्तर परिश्रम से मेरी बुद्धि भी तीक्ष्ण हो जायेगी'।

(३१)

शकटार उवाच—'विचक्षणे! विना देशकालानुसारिणा प्रकरणसंधानेन परिच्छेत्तुं न शक्यते राज्ञः स्मितकारणम्। तदवसरं कथय।

विचक्षणा चावसरं कथितवती। शकटार उवाच—'त्वं कथयसि यन्मूत्रप्रवाहं दृष्ट्वा पश्चादश्वत्थवृक्षं पश्यन् राजा जहास। तर्हि पूर्वदृष्टस्य कस्यापि वस्तुनो न हासनिमित्तत्वम्। आः! ज्ञातम्। मूत्रप्रवाहे प्रवहदश्वत्थबीजं क्षुद्रतरं दृष्ट्वा तदद्भुतं महापरिमाणं वृक्षं पश्यन् परामृष्टवान् राजा यदहो! वैकृत्यं विधातुः प्रपञ्चस्य। क्वेदं बीजम्, क्व च तरुस्तत्सम्भवः इति हसितं भूपालेन'। पुनः पुनः परामृश्य शकटारस्तदेव निर्धारितवान् अब्रवीच्च। विचक्षणया तदेव वचनं राज्ञः पुरस्तादुक्तम्।

सदा सत्पथ का अनुसरण करो और दृढता के साथ अपने काम में लगे रहो। संसार के सभी लोग बहुत बड़े विद्वान्, दार्शनिक, आविष्कर्ता या करोड़पति नहीं बन सकते। परन्तु सभी लोग अपना जीवन प्रतिष्ठा और सुख से पूर्ण अवश्य बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि अप्रतिष्ठा और विफलता उन कामों में नहीं है, जिनको लोग छोटा अथवा तुच्छ समझते हैं, किन्तु उन कामों को अपनी पूर्णशक्ति से न करने में है। जूता सीना निन्दनीय नहीं है, निन्दनीय है मोची होकर खराब जूता सीना।

बहुत लोग कहते हैं कि उद्यम व्यर्थ है, क्योंकि प्रत्येक प्राणी सुख की प्राप्ति के लिये यत्न करता है परन्तु उसे दुःख की प्राप्ति होती है। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर चाहे जिसे सुख या दुःख का पात्र बना दे। संसार के सब प्राणी ईश्वर के वश में होकर सुख या दुःख का अनुभव करते हैं और विद्या से अविद्या का नाश होता है। प्रयत्न से विद्या की प्राप्ति होती है, इस कारण समस्त दुःखों का नाश प्रयत्न से होता है। यदि इस जगत् में सारे अनर्थों का मूल आलस्य न होता तो कौन धनवान् अथवा बलवान् न होता?

(३२)

तं दृष्ट्वा शकटार उवाच—'वटो! कस्त्वम्, किमत्र कुरुषे च' ब्राह्मण उवाच—'चाणक्यशर्मा ब्राह्मणोऽहम्। साङ्गवेदमधी... पथा विवाहार्थितया गच्छतो मम कुशाङ्कुरेण पादे क्षत... क्षतेन विवाहभङ्गाऽमर्षितः प्रतिज्ञातवानस्मि यदस्याः

निर्मूल करिष्ये। ततो यूत्रायुर्वेदाधिगमादयमुपायः सुकरो निर्धारित यत्तक्रेण कुशा विनश्यन्तीति। तथा समाचरन् पूर्णप्रतिज्ञो भविष्यामि।

शकटार उवाच—'दिष्ट्या भवता यूत्रायुर्वेदाधिगमः कृतो नो चेत्प्रतिज्ञापूरणं कथं स्यात्?' चाणक्य उवाच—'यद्ययमुपायो न स्यात्तदाभिचारिके कर्मणि प्रवोद्धाऽस्मि, कुशविनाशकामनया होममेव करिष्ये।' तदाकर्ण्य शकटारश्चिन्तयामास—'अहो! अस्य ब्राह्मणस्यामर्षातिशय। अहो! उपायप्रवीणता यद्यय मम वैरिणो वैरी भवति तदाऽहं वैरोद्धारं करवाणि, विनाऽऽयासेनैव कृतार्थो भवामि।'

यह सुन कर वह बुढिया बोली—'मेरा तो और कोई नहीं है, केवल एक पुत्र है। किन्तु वह मूर्ख बेटा भी लगभग बारह वर्ष से इस बूढ़ी गरीब माता को छोड़ कर न जाने कहाँ चला गया'। अब सुना है कि—'जयपुर के महाराज रामसिंह के पहाड़ी किले में वह मेरा पुत्र कुछ काम करता है। रास्तागीर लोग यहाँ आकर पानी पीते हैं और मुझे कुछ देना चाहते हैं किन्तु पानी पिला कर मैं किसीसे कुछ नहीं लेती, क्योंकि मैं यह जानती हूँ कि प्यासे को पानी पिला कर और भूखे को भोजन खिला कर उसके बदले में कुछ लेना भारी पाप है। काठ की लकड़ी, मृगचर्म और जगली दवाइयाँ बेच कर किसी प्रकार मैं पेट भर लेती हूँ। परन्तु अब अत्यन्त बूढ़ी होने के कारण मुझसे परिश्रम नहीं हो सकता तथापि और क्या करूँ? वृद्धावस्था में ऐसा निर्वाह बड़ा कष्टदायक है। मैं अपने जीवन का शेष समय बड़े ही दुःख से बिता रही हूँ। इस अवस्था में पुत्र का वियोग तो मार ही डालता है'। यह कह कर वह रोने लगी।

(३१)

कस्मिंश्चिद्देशे शूरसेनो नाम राजासीत्। स पुत्रतुल्य प्रकृतीः पालयन् सुखेन कालं निनाय। सुमतिर्नाम तस्य मन्त्री। नृपतिस्तस्मिन्नत्यर्थं प्रीतिमानासीत्। तस्य सचिवस्य ईश्वरे परमा प्रीतिर्बभूव। 'जगतीह अहर्निशं यत्किञ्चित् घटते तत् सर्वमेव शुभाय' इत्येव तस्य बुद्धिरासीत्। शुभं वाप्यशुभं किञ्चित् धीरस्यास्य चित्तं विकलयितुं न प्रभवति स्म। परमात्मविहितं सर्वं सन्मङ्गलाय एव मन्यते स्म। 'भगवता विधात्रा यदेव विधीयते तत् सर्वमेव शुभाय' इति स सर्वदैवाकथयत्।

नृपतिरपि तस्य मुखादनिशम् पद्यमाकर्णयन् कदाचिदचिन्तयत्—'अहो! किमप्येन वीतधैर्यं कर्तुं नालम्। भवतु तावत्। अहमस्य धैर्यं परीक्षिष्ये'।

विन्ध्याचल के घने जङ्गल में मरीचि ऋषि का आश्रम था, जहाँ बहुत से शिष्य प्रतिदिन पढ़ने के लिए आते थे। एक दिन एक शिष्य अपने साथ एक तोते का बच्चा ले आया। ऋषि ने उसे देख कर और कुछ विचार कर कहा कि—'यह तोता पहले जन्म में विद्वान् ब्राह्मण था, एक महर्षि के शाप से इस दशा को प्राप्त हुआ है'। सब शिष्य यह सुन कर विस्मित रह गये। उन्होंने गुरु से सविनय निवेदन किया कि 'इसके पूर्व जन्म की कथा कह कर कृतार्थ कीजिये और कृपा कर कोई उपाय बताइये जिससे यह तोते का बच्चा अपने शाप से छूट कर पुनः ब्राह्मण जन्म प्राप्त करे'। यह सुन कर ऋषि ने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—'कुरु देश के प्रधान नगर हस्तिनापुर में सब शास्त्रों में कुशल, सब विद्याओं में प्रवीण, सब कलाओं में निपुण एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। उसका एक पुत्र था जो पिता के समान ही गुणी और विद्वान् था। उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह हिमालय पर तपस्या करने चला गया। बदरिकाश्रम पहुँच कर उसने घोर तप किया। उसी समय वहा एक कन्या आई और इसकी सुन्दर आकृति और अद्भुत रूप को देख इसकी सेवा में प्रवृत्त हुई। थोड़े ही दिनों में उनकी प्रीति दृढ हो गई'।

(३४)

प्रायेण सार्धद्विसहस्रं वर्षाणि व्यतीयुर्यद्-बभूव कपिलवस्तु नाम नगरी राजधानी, या किल वाराणस्या उदीच्यां दिशि सप्तदशयोजनेष्वासीत्। तत्र गौतमनाम्नि गोत्रे शाक्यवंश्याः क्षत्रिया राजानो बभूवुः। तेषु शुद्धोदनो नाम राजा विविदे। तस्य धर्मपत्नी मायादेवी नाम पुत्र सुषुवे। पिता तस्य 'सिद्धार्थ' इति नाम चकार। तज्जन्मनः सप्तमेऽहनि तस्याम्बा ममार। तस्मान्मातृष्वसा तस्य पालनं पोषणं च चक्रे। यदाय ववृधे स्वगोत्रनाम्ना 'गौतम' इति प्रसिद्धिं जगाम। एष बुद्धिमान् गुणी शूरो वीर्यवांश्च प्रतीत। ततो यूनि सञ्जातेऽस्मिन् यशोधरा नाम कापि राजकन्या सौन्दर्यादिगुणसम्पन्ना त पतिं वव्रे।

बहुत दिन हुए एक चक्रवर्ती राजा बड़ा प्रतापी धर्मात्मा और बुद्धिमान् हो गया है। उसका नाम शूद्रक था। एक दिन वह मन्त्रियों के साथ राजसभा में बैठा था कि द्वारपाल ने आकर निवेदन किया—'महाराज ! स्त्री और पुत्र समेत एक राजकुमार दक्षिण से आया है। वह नौकरी करना चाहता है। यदि आज्ञा हो तो आपके सम्मुख उपस्थित करूँ'। राजा ने कहा—'ले आओ'। जब वीरबल सभा में आया तो राजा ने उससे पूछा—'यहाँ आगमन कैसे हुआ?' वीरबल बोला—'महाराज! आपका यश सुनकर नौकरी के लिए आया हूँ'। राजा ने पूछा—'तुम क्या महीना लोगे ?' वह बोला—'प्रतिदिन सहस्र मुद्रा लूँगा'। राजा ने पूछा—'तुम्हारे साथ कितने मनुष्य हैं ?' उसने कहा—'एक स्त्री, दूसरा बेटा, तीसरी बेटी और चौथा मैं, पाँचवाँ मेरे साथ कोई नहीं है'। उसकी यह बात सुनकर राजसभा के लोग मुँह फेर कर हँसने लगे।

(३५)

विवाहाद्दशमे वर्षे सा सुतमेकं जनयामास। 'राहुल' इति तस्य नाम बभूव। दयालुस्वभावो गौतमः कस्यापि दुःखं न सेहे। यद्यप्यस्य पित्रा एष प्रयत्नः कृतोऽभूद् यदेतस्य दृक्पथे किमपि करुणोत्पादकं दृश्यं नावतरेत्तथापि दैवादेकदाऽयं कमपि वृद्धं यष्टिबलेन चलन्तं ददर्श। तदाऽस्य हृदि महती करुणा स्थानं लेभे।

ततः कालिदासस्तत्रैव राज्ञो विलाससदनोद्याने वसन् पथि गच्छतां तेषां गिरं श्रुत्वा चेटीं प्रेषितवान्—'प्रिये ! पश्य, क्व एते ब्राह्मणा इव गच्छन्ति ?' ततः सा समेत्य सर्वानपश्यत्। उपेत्य च कालिदासं प्राह—

एकेन राजहंसेन या शोभा सरसोऽभवत्।
न सा बकसहस्रेण परितस्तीरवासिना॥

सर्वे च बाणमयूरप्रमुखाः पलायन्ते, नात्र संशय इति। कालिदासः प्राह—'प्रिये ! वेगेन वासांसि मन्नादानय, यथा पलायमानान् विप्रान् रक्षामि'।

परन्तु राजा ने अपने जी में सोचा कि—'इसने जो इतना धन माँगा इसमें कुछ भेद है'। फिर उसने सोचा कि—'बहुधा दिया हुआ धन व्यर्थ नहीं जाता। किसी न किसी दिन सफल होता ही है' अपने भण्डारी को बुलाकर आज्ञा दी कि—'इसको प्रतिदिन सहस्र रुपये दिया करो'। वीरबल उस दिन रुपये पाकर

अपने घर गया और आधे रुपये उसने ब्राह्मणों को बाटे। चौथाई से अन्धे, लूले लगड़े आदि को भोजन कराया। और जो बचा उससे अपना और अपने कुटुम्ब का पालन किया। इसी रीति से वह प्रतिदिन अपना पालन करता और रात को ढाल-तल्वार बाँधकर राजद्वार पर पहरा देता था।

(३६)

ततः स कालिदासश्चारणवेषं विधाय खड्गमुद्वहन् कोशार्धमुत्तरं तेषां सम्मुखमागत्य सर्वानभिलक्ष्य 'जये'त्याशीर्वचनमुदीर्य पप्रच्छ चारणभाषया—'अहो भोजसभापण्डिता! सम्भूय कुत्र जिगमिषवो भवन्तः? कच्चित् कुशलं वो राजा च कुशली? अस्माभिः काशीदेशादागम्यते भोजदर्शनाय वित्तस्पृहया'। ततः परिहासं कुर्वन्तः सर्वे निष्क्रान्ता। ततस्तेषु कश्चित् विपश्चित् तद्गिरमाकर्ण्य तं च चारणं मन्यमानः कुतूहलेन प्राह—अहो चारण! शृणु त्वया पश्चादपि श्रोष्यत एव अतो मयेदानीमेवोच्यते। राज्ञा किलैभ्यो विद्वद्भ्यः पूरणाय समस्योक्ता। तत्पूरणाऽशक्ताः कुपिता देशान्तरे क्वचिज्जिगमिषव एते निश्चक्रमुः। चारणः प्राह—'राज्ञा का समस्या प्रोक्ता?' ततः पठति स विपश्चित्। तां च समस्यां पूरितां श्रुत्वा सर्वे चमत्कृताः। ततः चारणः सर्वान् प्रणिपत्य निर्ययौ।

एक समय फ्रांस के बादशाह नैपोलियन बोनापार्ट ने किसी स्त्री से पूछा—'बताओ! किन किन बातों की आवश्यकता है, जिनसे मनुष्य ठीक ठीक शिक्षा पावे'। स्त्री ने उत्तर दिया—'केवल पढी लिखी माताओं की आवश्यकता है'। स्त्री ने बहुत ठीक कहा। सच तो यह है कि बालकों की मुख्य शिक्षा घर पर ही होती है। बच्चों का स्वभाव है कि जो काम वे अपने माता, पिता, भाई, बहिन को करते देखते हैं वही वे आप भी करने लगते हैं। बहुधा छोटी अवस्था में बच्चा अपनी मा के पास रहता है और इसी कारण अपनी बहुत सी बातों में माता का अनुकरण करने लगता है। देखो २-३ वर्ष की अवस्था में बच्चे मा की बोली बोलने लगते हैं। इसका कारण यही है कि जिस बात को वे माता से सुनते हैं उसी को आप भी बोलने लगते हैं।

(३७)

आसीदुज्जयन्तो नाम पुरी। तस्यामुपक्रमो नाम राजा बभूव। स च

शौर्योपार्जितबहुवित्तो नीतिनेत्रो बहुपुत्रश्च परमकृतार्थो बभूव। एकः
रात्रौ निजगृहे सुखं शयानः स्त्रीक्रन्दनं शुश्राव। पश्चादुत्तमस्त्रीक्रन्द
निश्चित्य बहिर्निर्जगाम। रोदनरवानुसारेण गच्छन् नगराद् बहिः कि
स्यपि दूरे सर्वावयवसुन्दरीं स्त्रियमेकां रुदतीं ददर्श।

राजोवाच—'आर्ये सुन्दरि! केन दुःखेन रोदिषि?'

सुन्दर्युवाच— राजन्! तवाहं लक्ष्मीरियद्दिनपर्यन्तं शूरस्य नयर
लिनस्तव भुजच्छायायां स्थितास्मि। इदानीमन्यत्र गच्छामि, इ
रोदिमि'।

राजोवाच—'तर्हि रुद्यते कुतः?'

लक्ष्मीरुवाच-'तवानुरागेण'।

राजा—यद्यनुरागस्तदा त्यागे को हेतुः?

लक्ष्मी -'त्वं न जानासि लक्ष्मीरहं चलप्रकृतिर्नैकत्र चिरं वस्तुं
च्छामि'।

तञ्जोर का स्वामी राजा रघुनाथ बड़ा विद्याप्रेमी था। उसकी राजसभा में
अनेक पण्डित रहते थे। वह पण्डितों के साथ धर्म और काव्य के मर्मों का विच
किया करता था। कवि लोग नित्य नये काव्य रचकर राजा को सुनाया करते थे
पुरुष कवियों के साथ स्त्रियां भी उस सभा को सुशोभित करती थीं। वे भी पण्डि
के साथ धर्म और काव्य की आलोचना में भाग लिया करती थीं। वे भी नि
रचनाएँ बनाकर राजा को सुनाया करती थीं। उन विदुषी देवियों में मधुरवा
मुख्य थी। राजा की सभा में जितने पण्डित थे उन सब से अधिक प्रतिष्ठा मधु
वाणी की होती थी। उसकी कविता से राजा बहुत प्रसन्न होता था।

(३-)

विदितमेवेदं सर्वेषां सूक्ष्मदृशां स्थूलदृशां च यत्—संस्कृतभा
सर्वाभ्यो लोकप्रसिद्धाभ्यो भाषाभ्योऽतिप्राचीना दोषगन्धेनापि रहि
सर्वैः समादृता वर्णनीयविषयानुसारेण यथोपयोगं ललिता मधुरा पर
प्रसन्ना चेत्यादिमहासौष्ठवा। तस्यां च नानाविधा व्याकरण साहित
वेदान्त-न्याय-नीति-काव्य-धर्मशास्त्र-गणित-वैद्यकप्रभृतयोऽगणि
विद्याः सन्ति। यद्यपि ताः सर्वा अपि विद्याः स्वस्वविषयनिरूपणाय
ऽनुपमा एव, तथापि पदार्थनिर्वचने उहापोहसौकर्यसम्पादनेन बुद्धेः
दर्ढीकरणे यस्य कस्यचिद्विषयस्य सम्यङ्निरूपणे च तर्कशास्त्रमेव

सर्वोपरि विद्यते। वदन्ति च वृद्धाः—'काणादपाणिनीये च सर्वशास्त्रोपकारके' इति।

(क) एक दिन सैकड़ों विदुषी रमणियों के साथ राजा सभा में बैठा था। कोई स्त्री उसको रामायण गाकर सुना रही थी, कोई सङ्गीत सुना रही थी। एक स्त्री ने महाराज के विषय में एक कविता बनाकर सुनाई। राजा रामचन्द्र जी का अनन्यभक्त था। उस कविता में राजा की उस रामभक्ति का ही वर्णन था। पूरी कविता सुन चुकने पर राजा ने कहा 'मैं इस कविता को जितनी बार सुनता हूँ उतनी ही बार अधिक आनन्द पाता हूँ'।

(ख) जो सब मनुष्यों की भलाई चाहता है, जो सदा और मीठा बोलता है, जो योग्य पुरुषों का मान करता है, जिसका हृदय शुद्ध है, वह मनुष्य अपने कुटुम्ब में शिरोमणि होता है।

(१९)

यद्यप्यत्र उभे शास्त्रे समानोपकारके पठिते, तथापि शब्दशुद्धिमात्रफलकाद् व्याकरणाद् वाक्प्रागल्भ्यादिबहुफलं तर्कशास्त्रमेव। किं बहुना—

'विना व्याकरणेनान्धो, बधिरः कोषवर्जितः।
छन्दःशास्त्रं विना पङ्गुः, मूकस्तर्कविवर्जितः'॥

इति लोकोक्त्यापि 'व्याकरणं विनान्धतुल्येन गानपठनपाठनादिभिः किमपि सम्पादयितुं न शक्यम्, न तु तर्कशास्त्रं विना मूकतुल्येनाकिञ्चित्करेणे'ति द्योतितम्। यद्यपि तर्कभाषादयः प्राचीना ग्रन्था अपि बहवः सन्ति तथापि तेषु सर्वे विषया आवश्यका न सन्तीत्यतो मन्दमतिनाऽल्पबुद्धशास्त्राशयेनापि मया स्वसुतानां भ्रातुष्पुत्राणां च सुखेन बोधाय अन्यग्रन्थेभ्यः, किञ्चित् भित्त्वा प्रायः सर्वानप्यवश्यलेख्यान् विषयान् सुगमया रीत्या यथामति सङ्गृह्य न्यायप्रदीपोऽयं रचितः।

(क) जो अपने ही सुख में सुखी नहीं होता किन्तु दूसरे का भी सुख चाहता है, जो दूसरे के दुःख को देखकर प्रसन्न नहीं होता और जो दान देकर पीछे पछताया नहीं करता, उसे आर्यशील सज्जन कहते हैं।

(ख) बुद्धिमान् मनुष्य देश के समस्त व्यवहारों को, समय को तथा जाति के धर्मों को जानकर उसके अनुसार बर्ताव करता है। वह आदि और अन्त को

जानता है । वह जहाँ कहीं भी चला जावे वही श्रेष्ठ मनुष्यों का अधिपति
जाता है ।

(ग) जो बिना विचारे काम नहीं करता, जो पूछने पर ठीक ही उ
देता है, जो मित्रों के साथ लड़ाई झगड़ा नहीं करता और तिरस्कार पाकर
क्रोध नहीं करता, वह बुद्धिमान् है ।

(घ) जो विपत्ति पड़ने पर कभी दुःखी नहीं होता, जो आलस्य त्याग
उद्योग करता है, जो समय आनेपर दुःख भी सहता है, वही भार को उठाने
महात्मा है । वही धुरन्धर वीर शत्रुओं को जीतता है ।

(४०)

बभूव गौडविषये श्रीहर्षो नाम कविः । स च नलचरिताभिध
काव्यं कृत्वा परामृष्टवान्—

'अग्नौ परीक्ष्यते स्वर्णं काव्यं सदसि तद्विदाम् ।
किं कवेस्तेन काव्येन सद्भिर्यन्नानुगृह्यते' ॥

ततस्तत्काव्यं दर्शयितुं पण्डितमण्डलीमुद्दिश्य वाराणसीं जगा
तत्र च कोकनामानं पण्डितं श्रावयामास । कोकस्तु यदा मध्याह्नस
मणिकर्णिकायां स्नानार्थं गच्छति तदा गच्छन्नेवाकर्णयति । श्रीहर्
तमनुगच्छन् पठति प्रत्यहं, परं तदुत्तरं किमपि न प्राप्नोति ।

एकदा श्रीहर्षेणोक्तम्—'आर्य ! महाकाव्ये मया महान् श्रम
तत्परीक्षार्थं त्वामुद्दिश्य महतो दूरादागतोऽस्मि । पथि गच्छतो भव
पुरस्तात् सदसद्विवेकप्रत्याशया पठामि । भवान् न निन्दति न चा
नन्दति, तन्मध्ये कर्णमेव नार्पयति' ।

---

* महाकवि अश्वघोष ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'बुद्धचरित' में एक जगह पर लि
है कि—'वाल्मीकि के नाद ने वह उपजाया जो च्यवन महर्षि नहीं बना सके
इस पर एक प्रसिद्ध पण्डित ने लिखा कि—'इस प्रकार के उल्लेख से यह अनु
करना कि, वैदिक ऋषि च्यवन की बनाई हुई कोई रामायण गद्य में थी और
वाल्मीकि, की पद्यमय रचना प्रचलित होने पर लुप्त हो गई, बड़े साहस का
है । उस विद्वान् का यह कहना था कि—'हवा ही चल गई कि च्यवन की राम
वाल्मीकि के पहले थी' । एक दूसरे विद्वान् ने भी अपनी रघुवंश की भूमिक
यह माना है कि 'च्यवनरचित रामायण थी' । अत एव यह विचार करना अनु
न होगा कि—'बुद्धचरित के इस उल्लेख से यह कहाँ तक निकल सकता है' ।

(४१)

कोक उवाच–'आः ! कथमहं मध्ये कर्णं नार्पयामि, किन्तु सम्पूर्णं श्रुत्वा तद्गुणदोषान् वक्ष्यामि। काव्य तु मया कर्णे कृतम्, मनसि विचारितञ्च। भवान् न प्रत्येति तदा शृणोतु'। ततो मासमाकर्णितानि पद्यानि पपाठ। तदाकर्ण्य साश्चर्यं सानन्दश्च श्रीहर्षस्तत्पादयो पपात। श्रीहर्ष उवाच–'भो. कोकपण्डित ! परितुष्टोऽस्मि तव महत्त्वेन'। कोकपण्डितस्तु काव्यस्य गुणान् प्रदर्श्य दोषान् समाधाय त श्रीहर्षकविराजं प्रसन्न कृत्वा गृहं प्रस्थापयामास।

प्रसिद्ध कादम्बरी का पूर्वभाग हो लिखकर महाकवि बाणभट्ट स्वर्ग में जा विराजे और उस अद्वितीय का कथा उत्तरार्ध बाग के पुत्र ने पूरा किया। उसने पिता के अधूरे काम को पूरा करने के लिए ही अपना उद्योग बताया है और सज्जनता से कहा है कि–'पिता के बोये बीजों की फसल ही मैं इकट्ठा कर रहा हूँ।' इस पितृभक्त और पितृतुल्य कवि का नाम क्या था—इस पर पुराने विद्वानों ने ध्यान नहीं दिया। काश्मीर की हस्तलिखित पुस्तकों के सूचीपत्र में कादम्बरी के उत्तरार्ध के कर्ता का नाम 'पुलिन' दिया है। श्रीनाथ द्वारा निर्मित सूचीपत्र में तथा उदयपुर सूचीपत्र में 'पुलिन्द' नाम है।

(४०)

अथ गच्छता कालेन राज्ञि दिवङ्गते राज्य लब्ध्वा मुञ्जो मुख्यामात्य बुद्धिसागरनामानं केनापि मिषेण दूरीकृत्य तत्पदेऽन्यं नियोजयामास। एकदा सकलविद्यासु प्रवीणः कोऽपि विशेषतो ज्योतिःशास्त्रवेत्ता ब्राह्मणो राजसभामागत्य 'स्वस्ति देवाये' ति गदित्वोपविष्टः। स उवाच—राजन् ! जना मां सर्वज्ञं कथयन्ति। तस्मात् किमपि पृच्छ। यत —'कण्ठस्था या भवेद्विद्या सा बुधैः सदा प्रकाश्ये' ति। राजापि विस्मयाहङ्कारेण त्रिस्मितस्त बभाषे—'मम जन्मनः प्रभृति यद्यन्मया कृतं तत्सर्वं यथावद् वदसि चेत्तदा भवान् सर्वज्ञ एवे'ति। ततो ब्राह्मणोऽतिगुप्तान्यपि राज्ञ चेष्टितानि प्रोवाच। तस्य शास्त्रज्ञानेन राजा परां मुदमवाप। ततो विप्राय दश उत्तमाश्वान् ददौ।

उस दिन जैसा घोर संग्राम सात्यकि ने किया उसे कौरव बहुत दिन तक न भूल सकेंगे। द्रोण, भोज और कृतवर्मा को हराकर सात्यकि ने जरासन्ध और

महामात्य का वध किया। उनको मारकर सात्यकि आगे बढ़ा। इतने में द्रोण फिर आकर उनके सामने खड़े हो गये। साथ ही साथ दुर्योधन, विकर्ण आदि कौरवों ने एक साथ सात्यकि पर आक्रमण किया किन्तु अर्जुनशिष्य सात्यकि को हराना क्या आसान था? दुर्योधन भाग गया। कृतवर्मा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। अन्त में द्रोण ही सात्यकि का सामना करने को रह गये। घमासान लड़ाई के बाद द्रोण को भी हार माननी पड़ी। उसके बाद सात्यकि के हाथ से सुदर्शन मारा गया। कम्बोज, शक और यवनों की सेना हारकर भागी। दुर्योधन फिर आया, पर इस बार उसे दण्ड भी पूरा पूरा मिला।

(४३)

(क) ततः शर्मिष्ठायां जातं स्वसुतं द्रुह्युं जराग्रहणमयाचत। सोऽभाषत--जरया नरोऽसमर्थो भवति विषयानुपभोक्तुमतो नाहं जरामिच्छामी'ति। ययातिरुवाच—'यस्मात्त्वं मम वचनं न करोषि तस्मात्तव कोऽपि कामः सम्पत्स्यत' इति। ततोऽपरं पुत्रम् अनुमुवाच-'मम जरां गृहाणे'ति। अनुरुवाच---'वृद्धो नरो बालवद् वर्तते। तस्मान्न रोचते मे जरे'ति। ययातिरुवाच-'अतस्तव पुत्रा यौवनं प्राप्य विनाशं गमिष्यन्ती'ति।

(ख) 'अहो! निवर्तध्वं यूयम्। अहमेवास्य शत्रुपक्षपातिनो दुरात्मनः स्वयं निग्रहं कृत्वा यमसदनं प्रेषयामि।' इत्यभिधाय तस्योपरि समारुह्य, लघुभिः चञ्चुप्रहारैस्तं प्रहृत्य, समानीतरुधिरेण प्लावयित्वा तदुपदिष्टमूष्यमूकपर्वतं सपरिवारो गतः।

सूक्ष्मरीति से देखने पर मालूम होता है कि सब भाषाओं की माता निस्सन्देह यह संस्कृतभाषा ही है। मूलस्थान भारतवर्ष से उसका प्रचार जैसे जैसे दूर देशों में होता गया वैसे वैसे उसका अपभ्रंश होकर दूसरी भाषाएं बनती गई।

पत्रादिलेखनप्रकारः

(१) पित्रे पत्रप्रेषणप्रकारः। अर्गलपुरतः।
२८।१०।३६

श्रीमत्सु पूज्यपितृचरणेषु सादरं प्रणतयः सन्तुतराम्।

अत्राहं कुशली, आशासे श्रीमन्तोऽपि सर्वे कुशलिनो भविष्यन्ति। भवदनुमत्याऽहमत्रत्ये 'सेंजांसकालेजा' भिधे महाविद्यालये प्रविष्टोऽ

स्मि। परमत्रान्यत्रापेक्षया व्ययाधिक्यं वर्तते। प्रवेशशुल्कं पाठनशुल्कञ्चापि अत्र गृह्यते। भोजनव्ययोऽपि साधारणतः प्रतिमासस्याष्टौ रूप्यकाः। अतो भवद्भिर्यद्धनं पूर्वं प्रहितमासीत् तत्सर्वं समाप्तिमगच्छत्। सम्प्रति कृपया चत्वारिंशद्रूप्यकाणि धनादेश (मनीआर्डर)—द्वारेण शीघ्रं प्रेषणीयानि। येनाहं स्वकीयं सर्वं कार्यं निर्वोढुं प्रभवामि। अस्तु, मदीयं पठनकार्यमपि साधु भवति। न कापि चिन्ता श्रीमद्भिः करणीया। अत्र सर्वासु परीक्षासु प्रथमश्रेण्यां समुत्तीर्णो भवामि। अतो नूनममेऽपि तथैव स्यादीशकृपातो मे परिणामः। मात्रे सप्रश्रयं मदीयं प्रणामो वाच्यः। तत्रत्यवृत्तान्तपूर्णं शीघ्रमेव देयं पत्रम्। अन्यत्सर्वं भव्यम्।

मवत्पुत्रो—
नवीनचन्द्रः।

---

(२) गुरवे पत्रम्।

वृन्दावनतः।

श्रीमत्सु गुरुचरणपङ्कजेषु अनेकशो नतयः समुल्लसन्तुतमाम्।

भगवन्! मासचतुष्टयतोऽद्यावधि भवद्भिर्न किमपि पत्रं प्रेपितं सेवकसन्निधावतोऽतीवोत्कण्ठितोऽस्मि श्रीमतां श्रेयो ज्ञातुम्। अधुना झटित्येव पत्रं प्रेषयिष्यन्ति तत्रभवन्तो गुरवः। विशेषतः क्षन्तव्योऽस्मि। किमन्यत्।

गुरुचरणाश्रित —
मुकुन्दशर्मा।

---

(३) अनुजं प्रति पत्रम्।

चिरञ्जीव! सस्नेहं शुभाशीर्वादा विलसन्तु मे त्वयि।

त्वत्कोमलकराङ्किता प्रहितपत्रिका यथाकालं मे करगताऽभूत्। साद्यन्तमधीत्य महानानन्दो जातः। साम्प्रतं त्वया मासचतुष्टयं यावत्तत्रैवाध्युष्य पठनीयम्। शीघ्रमेव त्वदर्थं किञ्चिद्धनं प्रेषयिष्यामि। भ्रातः अस्माकं कुशलं जानीहि। स्वकुशलं च सर्वदा प्रदेयमेव। इदानीमहं जन्मभूमिं द्रष्टुमनाः स्वगृहं यामि। तत आगत्य तत्रत्योदन्तेन सूचयिष्यामि त्वाम्।

तव शुभेच्छु —
सतीशचन्द्रः।

---

(४) प्रधानाध्यापकायावकाशविषयकपत्रम् ।

श्रीपूज्यप्रधानाध्यापकेषु सततं नतिततयः सन्तुतराम् ।

पूज्या गुरवः ! सादरं सानुनयं विनिवेदनमिदं मामकीने यत्
गेहे कनिष्ठभ्रातुः सच्चिदानन्दस्यास्मिन्नेव मासे चतुर्विंशतितम्यां ति
विवाहो भविता, वरयात्रा च श्रीनगरं यास्यति। तत्र च मदुपस्थिति
तरामावश्यकी। अतश्चतुर्णां दिवसानामवकाशप्रदानतोऽनुग्राह्योऽस्मि
आशासे च मद्विनम्रनिवेदनं स्वीकृतं भविष्यति।

भवतां सेवकः —
पुष्पानन्द
व्याकरणमध्यमाप्रथमखण्डर

---

(५) अन्यविषयकावकाशपत्रम् ।

श्रीमतां पाठशालाप्रधानाध्यापकमहाभागानामग्रेऽभ्यर्थनेयम् ।

प्रभो ! अस्ति सविनयं निवेदनमेतत्–यदहं गतार्धरात्रितो ज्वरप्र
शिरोवेदनया च पीडितोऽस्मि, अतोऽद्य पाठशालामागन्तुं तत्र स्थ
क्षमोऽस्मि । कृपयाद्यतनस्य दिवसस्यावकाशं स्वीकर्तुमर्ह
श्रीमन्तः ।

भवतां वशंवदः—
सुमित्रानन्
दशमश्रेणीस

(६) भारते भातु भारती ।

सुरभारतीकार्यालयतः ।

अयि श्रीमन्तो माननीयाः !

सहर्षमिदमावेद्यते यदद्य 'सुरभारती'नामकपत्रमिदं श्रीमत्सेवाया
दर्शरूपेण सादरं सम्प्रेष्यते । एतस्य त्रिंशत्तमे पत्रे सुरभारतीसन्देशश्चै
प्रकाशितोऽस्ति, स च भवद्भिः कृपया सावधानं पठ्यताम् । अतश्चा
स्यते–सुरभारतीपत्रस्यास्य संरक्षणार्थं ग्राहकत्वमस्योररीकृत्य मामद्
ईकभाजनतां नयेयुस्तत्र भवन्तो लेखादिप्रेषणसाहाय्यञ्च काले क
कुर्युरिति ।

परिशिष्टम्

शब्दार्थकोषः–

पाठ १

(अ)

पुरञ्जन (पु०)=एक मनुष्य का नाम।
अस्थाने (अ०) = अकारण।
विषण्ण (वि०)=उदास।
आयुष्मत् (वि०)=चिरञ्जीवी।
अलम् (अ०)=निषेधार्थक।
दौर्मनस्य (न०) खिन्नता, उदासीनता।
निर्बन्ध (पुं०) = आग्रह, हठ।
व्यामोह (पु०)=मोह।
आ + लप् (१ गण०, पर०) = बातचीत करना।
सम् + तुष् (४ गण०, पर०)= सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना।
मुच् (६ गण०, पर०)=छोड़ना।
सारस्वतोत्सव० (पु०) = (सारस्वत = सरस्वतीसम्बन्धी उत्सव) सरस्वती का उत्सव।

(ब)

एकबार=एकदा, कदाचित्।
चुपचाप=तूष्णीम्, मौनम्।
हाल=दशा।
गरमागरम=अत्युष्णम्।
भूलमें हो=भ्रान्ताः (यूयम्)।
हर एक=प्रत्येकम्।
झगड़ा होना=विग्रह।
सलाह करके=सम्मन्त्र्य।
आगे से = अतः परम्, इत० परम्, भविष्यति।
जल गया = दग्धमभवत् (दह्, १ गण०, पर०, जलना।)
हिस्सा=भाग०, अंश।

पाठ २

(अ)

अधुना (अ०)=अब।
प्रथमतरम् (अ०)=बहुत पहले।
प्रतिक्रिया (स्त्री०)=दूर करने का इलाज, उपाय।
यथावृत्तम् (क्रि० वि०) = जैसा हुआ हो।
दिव्य (वि०)=अलौकिक।
शठमति (वि०)=दुर्बुद्धि।

(ब)

वैरी=शत्रु, अरिः ।

चलते समय=प्रस्थानकाले, प्रस्थानाऽवसरे ।

चारों ओर=सर्वत समन्तात् ।

हवा चलना=वा (२ गण०, पर०, वाति) ।

मेरे हाथों से = मम हस्ताभ्याम्, मत्सकाशात्, मत्त ।

मिठाई=मिष्टान्नम् ।

चहचहाना = कूज् (१ गणा, पर० कूजति) ।

देखते देखते=पश्यन्, ईक्षमाण ।

पाठः ३

(अ०)

आक्षिप्य (अ०)=रोककर । (आ + क्षिप् १ गणः, पर० रोकना) ।

परिचय (पु०)=ज्ञान ।

उषित (न०)=(वस्+क्त,भूत-कालिक कृदन्त) रहना ।

जन्तु (पु०)=प्राणी ।

विद्ध (वि०) = (व्यध् + क्त, भूत० कृ०) वेधा गया ।

पातिन् (वि०) = विनाशी ।

यशःकाय (वि०) = यशरूपी शरीरवाला (मृत) ।

आवेदयतु=बतावो ।

आगम (पु०)=प्राप्ति ।

समासादन (न०) (=सम्+आ+सद्+णिच्+क्त) प्राप्त करना ।

सबहुमानम् (क्रि० वि०) = आदर पूर्वक (बहुमान = आदर, इह० साथ)

प्राप्तकाल (वि०) = (प्राप्तः कालो येन सः) जिसका समय आ गया है ।

अपातयत्=भविनाशी ।

(ब)

दो बात के लिए=गुणद्वयेन, द्वाभ्यां गुणाभ्याम् ।

इतना=एतावत्

बचपन = बाल्य (न०) ।

फैल गये = ख्यातिं गता, प्रसिद्धा, विश्रुता ।

सुरीला = मधुर (वि०) ।

लालसा = तृष्णा ।

पाठ. ४

(अ)

मृदु (वि०) = सरल, मुलायम, जिसका प्रभाव न हो ।

करतलगत (वि०)=हाथ में आया हुआ ।

पाप (वि०) = पापी ।

अधि+क्षिप=निन्दा करना (१ गण, पर०) ।

एकान्ततः (अ०) = बिल्कुल, सर्वथा ।

कूपमण्डूक (पु०)=कुए का मेंढक, मूर्ख।
अर्थ (पु०) वस्तु।
उप + क्षिप्=छेड़ना (उपस्थित करना)।

(ब)

जीत सकना=जेतुं शक (५ गण, पर०)।
आजतक=अद्य यावत्।
सब तरह=सर्वथा, सर्वप्रकारेण, सर्वात्मना।
हक=अधिकार (पु०)।
आशा करते हो=आशास्से (आ + शास् २ गणः, आ०)।
तरफ=पक्ष (पु०)।
हो सकता है=सम्भवति।
चाहना=स्निह (४ गण, पर०, स्निह्यति)।

पाठः ५

(अ)

शरीरस्थिति (स्त्री०)=(शरीर की स्थिति-निर्वाह) जीवित रहना।
अपहन्ति=(अप + हन्) मिटाता है, दूर करता है।
शरीरावसाद (पु०)=(शरीर + अवसाद थकावट) शरीर की थकावट या कमजोरी।
ओज (न०)=बल, तेज।
निद्रानिष्ठ (वि०)=निद्रा में स्थित, सोया हुआ।
जन् (णिच्)=उत्पन्न करना।
श्रान्ति (स्त्री०)=थकावट।
अप + नी=दूर करना।
साम्य (न०)=समता।
तन्-(८ गण, उ० प०—तनोति, तनुते) करना।
प्रसाद (पु०)=प्रसन्नता।
स्वावसान (न०)=(स्व—अपना, अवसान-समाप्ति) अपना अन्त।

(ब)

ज्योतिर्विद्या=ज्योतिःशास्त्रम्, ज्यौतिषम्।
वास्तव में=वस्तुतः।
छोटा=कनीयस्।
इतनी=एतावती, इयती।
व्यतीत करना=वि + अति + इण् (२ गण, पर०)।
बहुत=भूयस् (अ०)।

पाठः ६

(अ)

उत्तरापथ (पु०)=उत्तरी हिन्दुस्तान।
श्रद्धापरायण (वि०)=श्रद्धा में लगा हुआ, श्रद्धासक्त।

नियन्तृ(पु०)=नियम में रखने वाला। हैम (वि०) सोने का बना हुआ।
महिमा (महिमन् पुं०)=गौरव। हृ=(१ गण, पर०) चुराना।
अनु + इण्=पीछे पीछे घूमना। भवितव्यता=होनहार, भाग्य।
सख्य (न०)=मित्रता।

(ब)

चार बज चुके हैं = चतुर्वादन सञ्जातम्। आवश्यक=नैत्यिक (वि०)।
लगभग=प्राय, प्रायेण, प्रायशः (अ०)।
बिस्तर = शय्या, आस्तरण (न०)। अगोछा=उपयत्नम्।
योग्यतानुसार = योग्यतानुकूलम्।

पाठ ७

(अ)

यथाकर्म(क्रि०वि०)=कर्म के अनुसार। सुकृत (न०)=पुण्य, उत्तम कर्म।
वि=तृ=देना। असुकृत (न०) = पाप, दुष्कर्म।
कारागार (पु०)=कैदखाना। अभाव (पु०)= न होना, न रहना।
दारा (पु०)=(नित्य बहुवचनान्त) स्त्री०। हित्वा=छोड़कर (हि = त्यागा)

(ब)

छिपाना = गोपनम्। छिपना = तिरस् + धा, तिरोधा, (३ गण०, उभयपदी)।
खासी=कासः।
बिजली=विद्युत् (स्त्री०)। होस्टल =छात्रावास।
मेज=लेखनाधार। जगमगाना=दीप्, (४ गण, आ०)
पलङ्ग=पर्यङ्क। कुर्सी = पीठक (न०), आसन्दी (स्त्री०)।
बड़ा=विपुल (वि०)।

पाठः ८

(अ)

कुड्य (न०)=दीवार। कीलक (न०)=कील।
बन्ध=(६ गण प०) बांधना। परि + भ्राम् =घुमाना।
श्रेष्ठिन् (पु०)=सेठ। इतरा=दूसरी।
दण्डाघात (पु०)=(दण्ड+आघात) डण्डे की चोट। विशरारुता = फैलना, फैलाव, बिखरना।

(ब)

अचानक=अकस्मात्।
चाल=अभ्यासः।

बचाना=रक्षणम्।
धोखा खाना=वञ्च्, प्र + त।

पाठ. ९

(अ)

कान्दविक (पु०)=हलवाई।
मुक्तामोदक (पुं०)=मोतीचूर के लड्डू।

पोलिका (स्त्री०)=गेहूँ के आटे की पूरी।

(ब)

शिकायत करना=आ + क्षिप्, (६ गण, पर०)।

पड़ोसमें रहनेवाली=प्रतिवेशिनी।
कङ्कर=दृषत्कण (पु०)चूर्णखण्ड(पु०)।

पाठ १०

(ब)

साहूकार=श्रेष्ठी।
डयोढ़ी=देहली द्वारपिण्डी (स्त्री०)।
चौबारा=अट्ट (पु० न०)।

समय पाकर=कालेन, समय प्राप्य।
थूकना=ष्ठिव् (४ गण, पर०)।
घण्टी=घण्टिका।

पाठ. ११

(अ)

पान्थ (पु०) = राहगीर।
घर्मार्त = (घर्म + आर्त) धूप से व्याकुल।
तदवस्थम्=(सा अवस्था यस्य स तदवस्थ तम्) उस दशा में पड़े हुए (को)।
चर्मकार.=चमार।

लब्धसंज्ञ.=(लब्धा संज्ञा येन स.) होश में आया हुआ।
विपणि. (स्त्री०)=दूकान।
उद्धृत्य (अ०)=निकाल कर।
बिन्दुशः (अ०)=बूँद बूँद।
प्रतिबन्ध (पु०)=रुकावट।

(ब)

पोता= पौत्र.।
सताना = पीड् (१० गण, पर०)— पीडयति।
चिल्लाना=क्रन्द् (१ गण, पर०)।
सदा के लिये सोना = मरणम्, (मृ १ गण, आ०)।

बाबा=पितामहः।
इधर उधर=इतस्ततः।
तलाश करना=अनु + इष् (४ गण, प०), मार्ग (१० गण, प०) (अन्विष्यति, मार्गयति)।

पाठः १२

(अ)

विगतनिद्र·=(विगता निद्रा यस्य स) जगा हुआ।

आस्तरासन्नम् (आस्तर बिछौना, आसन्न समीप) बिस्तरे के पास।

उपवीत (न०)=यज्ञोपवीत।

वसति (स्त्री०)=निवासस्थान।

बहुश (अ०)=अनेकवार।

पितृकल्प·=पिता के तुल्य।

(ब)

बालू का पुल=बालुकासेतु (पु०)।

बहना=प्र+वह (१ गण, पर०।)

फेंकना=क्षिप् (६ गण, प०), अस् (४ गण, प०)।

बारबार = पुन पुनः, भूयो भूय।

अनायास ही=अनायासमेव, सारल्येनैव, लीलयैव।

पाठ· १३

(अ)

द्रविण (न०)=धनम्।

वचोभङ्गि· (स्त्री०)=कहने का ढग।

अवतार्य (अ०)=उतारकर (अव=त णिच्, उतारना)।

सीद् = (१ गणः, पर०) पीड़ित होना।

पाठ १४

(अ)

निरङ्कुशः=स्वाधीन, स्वतन्त्र, बिना रोक टोक का।

वि + मृश् (६ गण, पर०)= विचारना।

ईश्वर =समर्थ, सम्पन्न।

सम + विद् + णिच्=समझना।

व्यसनमहागर्तं =(व्यसनम् एव महागर्त तत्र) कष्टरूपी बड़े गड्ढे में।

क्षपणम् (न०)—विनाश।

गाङ्गय (पु०)=भीष्म।

यापयितव्यः=बिताना चाहिए, (या + णिच् + तव्य·)।

(ब)

नीचे=अधस्तात्, अध (अ०)।

तङ्ग=सङ्कुचित (वि०)।

किनार-किनारे=तटेन, तीरेण।

संयोगवश=सयोगात्, दैवयोगात्

एक दूसरे के सामने=अन्योन्यस्य पुरत।

मुड़ कर=परिवृत्य (परि + वृ + ल्यप्)।

एक ओर = एकतः (अ०)। दूसरी ओर = अपरतः (अ०)।
फिसलना = स्खलनम्। धीरे धीरे = शनैः शनैः (अ०)।

पाठ १५

(अ)

आसमुद्रम् = समुद्रपर्यन्त। प्रशासति = शासन करते हुए (प्र + शास + शतृ, सप्तमी वि०)।
तद्रुरुकर्पासहिष्णु = (तद् + उरुक पं + असहिष्णु) उसकी वृद्धि को न सहने वाला। विषाद (पु०) = दुःख।
प्रस्तुत (वि०) = तयार। हस्तलाघवम् = हाथ की सफाई, कौशल।

(ब)

महिमा (महिमन्) (पु०) = गौरवम्। गाई गई है = वर्णिता, गीता।
चर्चा = प्रसङ्ग (पु०)। होनेवाला = जायमान, उत्पद्यमान (वि०)।

पाठ १६

(अ)

कौतुकम् = आश्चर्यजनक बात। अपेयात् = पृथक् हो जावे (अप + इण् + लिङ्)।
जीवितशल्यम् = जीवन का काँटा, दुःखदायिनी। पटहो दापित = घोषणा कराई।
नयनविकला = अन्धी। नीरुज् = रोगरहित।

पाठः १७

(अ)

प्रमत्त' = (वि०) = पागल। वातग्रस्त (वि०) = उन्मादी।
असमम् (क्रि० वि०) = अनुचित। निर्विण्ण' (वि०) = ऊब गया, (निर् + विद् + क्त)।
सज्ज (वि०) = तयार।
कोपारुणितलोचन = (कोप + अरुणित लोचन) गुस्से से लाल हैं नेत्र जिसके। चतुरङ्गसेना = हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सिपाही वाली सेना।

(ब)

पिछले समय में = पुरा। हर प्रकार की = सर्वविधा (वि०)।
खुद = स्वयम्। एक वन से दूर वन में = वनाद्वनम्।
चलते चलते = क्रमेण गच्छन्। काटकर = कर्तित्वा।

तद् वृत्तम् = यह हो गया । अपाय (पु०) = विनाश ।
विराव (पु०) = शब्द ।

(व)

यत्न करना = यत् (१ गण ,आ०) बावडी = वापी ।
तालाब = तडाग (पु०) । खुदवाना = खनु+णिच् ,
पास = समीपम् , सविधम् । (खानयति) ।

पाठ २४

(अ)

शावक (पु०) = बच्चा । नीवार (पु०) = एक प्रकार का चावल
क्रोड (पु०) = गोद । का अनाज (मुनियों का अन्न)।
स्थातव्यम् = जिन्दा रहेगा । अपकीर्ति (स्त्री०)= अपयश, निन्दा।

(ब)

खिलना = वि + कस् (१ गणः, प०) । मछली = मत्स्य, मीन (पु०) ।
खेलना = वि + हृ (१ गणः, पर०) ऐसा लगा = तथाऽभात् ।
विहरति । मत छोड़ = मा मुञ्च ।

तरकस = इषुधि (पु०) । पाठ २९

(अ)

षटपदम्पती = चिड़ियों का जोड़ा । निलय (पु०) = घर, घोंसला ।
घर्मार्त =घाम-धूप से पीड़ित । पुष्करः (न०) = सूँड़ ।
विशीर्ण (वि०) (वि+शॄ+क्त), अभ्येत्य = (अभि + इण् + ल्यप्)
बिखर गया । पास जाकर ।
सत्य (वि०) = सच्चा । गजापसद = नीच दुष्ट हाथी ।

(ब)

घूमते घूमते = परिभ्रमन् । प्यास = पिपासा, तृषा ।
अन्धा = अन्ध , नेत्रहीन । दूर हो जा = अपसर (अप+सृ,
थोड़ा = अल्पम् , किञ्चित् । १ गण , पर०) ।
अभी=सत्वरम्, इदानीमेव, अधुनैव । वाणी से = वचनादेव ।

पाठः ३६

(अ)

आसाद्य = पाकर, जाकर इष्टा = प्रिया ।
भेक (पु०) = मेंढक । कियन्मात्र = कितना, क्या हस्ती है

वराक (वि०) = बेचारा। मन्त्र (पु०)=सलाह।

(च)

आसानी से=अनायासेन। कुछ कुछ=यत्किमपि, यत्किञ्चित्।
निरादर करने से=तिरस्कारेण।

पाठः २७

(अ)

वीर्यातिरेक (पु०)=(वीर्य+ अतिरेक) पराक्रम की अधिकता। समयधर्म =ठहराव, समझौता।
प्राणयात्रा = जीवननिर्वाह, भोजन।
उच्छेदन (न०) = विनाश। श्वापद (पु०)=व्याघ्र आदि जानवर।

(च)

व्याकुल होकर=व्याकुलीभूय, सन्तप्य। बातचीत करना = आ+लप्, (१ गण, पर०)।
व्यर्थ ही = व्यर्थमेव, वृथैव। प्रतिज्ञा करना=प्रति + ज्ञा (जा), (६ गण पर०)।
ऊपर से=उपरिष्टात् (अ०)। टुकड़ा = खण्ड (पु०)।
चोंच = चञ्चु (स्त्री०)। उड़ना=उद्+डी, (४ गण, आ०)।
पकड़ कर = आदाय, गृहीत्वा।

पाठः २८

(अ)

शराव (पु०)=कुल्हड़। कराल (वि०) = नीच, भयङ्कर दुष्ट।
शक्तुशरावम्=शराव भर सत्तू। प्रत्युद्धार (पु०) = बदला लेना।
परिवारसहारसम्भवस्य=परिवार के नाश से उत्पन्न।

पाठ २९

(अ)

दायाद (पु०) = हिस्सेदार, कुटुम्बी। उद्वेजित =(उद् + विज् + णिच्+क्त) सताया हुआ।
अरघट्टघटी=अरहट।
अश्रद्धेय (वि०)=विश्वास के अयोग्य। विभाव्य=(वि + भू+णिच + ल्यप्) सोचकर।
परिभव (पु०) = तिरस्कार। सङ्गम (पु) = मेल।

(च)

दर्पण = दर्पण, आदर्श (पु)। किस प्रकार=कथम्।

पाठ ३०

(अ)

आश्रम (पुं०)=स्थान। ह्रद (पु०)=गड्ढा,कुण्ड,गहरा तालाब।

विद् = होना (४ गण , आ०) ।
प्रतीत (वि०) = विख्यात (प्रति + इण् + क) ।
योजन (न०) = ४ कोस, ८ मील ।
सू = उत्पन्न करना (२ गण आ०)
मातृष्वसा (स्त्री०) = मौसी ।

(ब)

बहुत दिन हुए = अतीते बहुतिथे काले ।
नौकरी = सेवा वृत्ति ।
महीना लेना = वर्तन (न०), मासिक (वि०) ।
द्वारपाल = द्वारपाल, द्वास्थ (पु०)
यदि आज्ञा हो तो = आज्ञापयं चेत् आदेशश्चेद् भवताम् ।
मुँह फेर कर = मुख परावर्त्य ।

पाठ ३६

(अ)

दृक्पथ (पु०) = दृष्टि के सामने ।
यष्टि (स्त्री०) = छड़ी, हाथकी लकड़ी ।
प्रमुख (वि०) = मुख्य, आदि ।
दृश्य (न०) = देखने योग्य व: नजारा ।
विलाससदन (न०) = विलासगृह ।
वासस् (न०) = वस्त्र ।

(ब)

भेद = रहस्य (न०) ।
भण्डारी = कोषाध्यक्ष, कोषपाल (पु०) ।
चौथाई = अर्धार्ध (न०), चतुर्थांश (पु०), तुर्यभाग (पु०) ।
किसी न किसी दिन = कदाचित् ।
बाँटना वि + भज, (१ गण, प विभजति) ।
ढाल = चर्मफलकम् ।
पहरा देना = उप + स्था, (१गण पर०)
लूला = खञ्ज (वि०)

पाठ ३७

(अ)

चारण (पु०) = भाट ।
उदीय = कहकर ।
जिगमिषु (वि०) = जाने की इच्छा वाला ।
विपश्चित पु० = विद्वान् ।
निरूप्य = देखकर ।
सम्भूय = मिलकर, इकट्ठे होकर ।
स्पृहा = इच्छा ।

(ब)

बादशाह = नृप अधिपति ।
छोटी अवस्था = बाल्य, बाल्यावस्था, शैशवावस्था ।
बोली = वाणी, वाच् (स्त्री०) ।
पढ़ी लिखी = विदुषी (स्त्री०) ।
बच्चा = शिशु ।

पाठः ३८

(अ)

शौर्योपार्जितबहुवित्त=पराक्रम से कमाया है बहुत धन जिसने। नीतिनेत्र = नीति ही नेत्र जिसके, नीतिज्ञ।

चलप्रकृतिः = चञ्चल स्वभाव की। क्रन्दन (न०)=रोना।

(ब)

मर्म=रहस्य (न०)। रचना=वि + रच्।

भाग लेना=सहयोगदान (दा, ३ गण, उ० प०)। बनाकर=निर्माय, विरचय्य।

पाठ ३९

(अ)

सूक्ष्मदृश् (क्) (वि०) = विचारशील, बुद्धिमान। स्थूलदृश् (क्) (वि०) = साधारण बुद्धि वाला।

दोषगन्ध (पु०) = थोड़ा भी दोष। परुष (वि०) = कठोर।

ऊहापोह (पु०) = कल्पना, तर्क वितर्क। तर्कशास्त्र (न०) = न्यायशास्त्र।

काणाद (वि०) = कणादमुनि विरचित तर्कशास्त्र। पाणिनीय (न०) = पाणिनि मुनि विरचित व्याकरणशास्त्र।

(ब)

जितनी बार = यावत्कृत्व (अ०)। उतनी बार = तावत्कृत्व (अ०)।

भलाई = हितम् (न०)। मीठा = मधुर (वि०)।

पाठ ४०

(अ)

पङ्गु (वि) = लगड़ा। मूक (वि) = गूँगा।

ख्यापितम् = प्रकट किया। भ्रातृपुत्र (पु०) = भतीजा।

(ब)

पछतावा करना = पश्चात्ताप, (४ गण, आ०)। बर्ताव करना = वृत् (१ गण, पर०)।

जहा कहीं = यत्र कुत्रापि। लड़ाई झगड़ा = कलह (पु०), कलि (पु०)।

भार उठाने वाला = भारोद्वाही (वि०)।

पाठ ४१

(अ)

गौडविषय (पु०) = गौड देश, (यह देश बङ्गाल में है)। कर्णमेव नार्पयसि = सुनते ही नहीं हो।

सदस् (न०) = सभा।

(ब)

एक जगह = एकस्थले। उपजाना = उत् + पद् (णिजन्त)।
हवा चलना = प्रवातोऽभवत्। निकलना = सिध्, (४ गण, पर० सिध्यति)।

पाठ ४२

(अ)

प्रत्येषि = विश्वास करते हो। समाधाय = समाधान करके।

(ब)

पूरा किया = पूरयामास, अपूरयत्। इकट्ठा करना = सङ्ग्रह, (सम् + ग्रह, ९ गण, उ० प०)।
फसल = कृषिफलम्।
अधूरा = असम्पूर्ण, असमाप्त (वि०)।

पाठ ४३

(अ)

दिवगत (वि०) = मृत। मिष (न०) = बहाना।
मुद् (स्त्री०) = प्रसन्नता।

(ब)

भूलना = वि + स्मृ, (१गण, पर०)। हरा कर = पराजित्य।
इतने में = तदैव। सामने = पुरतः, अग्रे, सम्मुखम् (अ०)।
आक्रमण करना = आ + क्रम्। सामना करना = प्रति + युध्, (४ गण, आ०)
घमासान = तुमुल (वि०)।

पाठ ४४

(अ)

काम (पु) = अभिलाष, इच्छा। निग्रह (पु) = दण्ड।
यमसदन (न०) = (यम मृत्यु, सदन=गृह) मृत्युलोक। लघु (वि०) = हल्का।
प्लावयित्वा = भिगोकर।

(ब)

सूक्ष्म रीति से = सूक्ष्मया दृष्ट्या। मालूम होता है = प्रतीयते।
जैसे जैसे = यथा यथा। भीख माँगना = भिक्षावृत्ति (स्त्री०)।
कुँजड़ा = शाकविक्रेता, शाकवणिक्।

॥ इति ॥

परिशिष्टम्

अक्षरमाला (वर्णमाला)

१.	अ	इ	उ	ऋ	ऌ = ह्रस्व स्वर ।
२	आ	ई	ऊ	ॠ—ए ऐ ओ औ = दीर्घ स्वर ।	
३	क	ख	ग	घ	ङ = कवर्ग (कु)
४	च	छ	ज	झ	ञ = चवर्ग (चु)
५	ट	ठ	ड	ढ	ण = टवर्ग (टु)
६	त	थ	द	ध	न = तवर्ग (तु)
७	प	फ	ब	भ	म = पवर्ग (पु)
८	य	र	ल	व	= अन्तस्थ
९	श	ष	स	ह	= ऊष्म

संस्कृत तथा हिन्दीभाषा की यह अक्षरमाला लौकिकी है। संस्कृत भाषा के समस्त पद अक्षरों से निर्मित है। प्रत्येक भाषा वाक्य रूप होती है। वाक्य पदों से, पद अक्षरों से और अक्षर वर्णों से कल्पित है। इस प्रकार भाषा के उपादान कारण वर्ण ही ठहरते हैं। अखण्ड एकत्व व्यवहार के योग्य स्पष्टध्वनि को 'वर्ण' कहते हैं। जिस वर्ण का बिना किसी की सहायता के उच्चारण किया जा सके, उसे 'स्वर' कहते हैं। तथा जिसका उच्चारण (१) स्वर की सहायता के बिना न किया जा सके उसे (२) 'व्यञ्जन' कहते हैं। ऊपर प्रदर्शित अक्षर माला में प्रथम तथा द्वितीय पंक्ति में स्वर लिखे गये हैं। शेष व्यञ्जन हैं। केवल व्यञ्जनों का उच्चारण न किया जा सकने के कारण उनमें प्रथम स्वर 'अकार' जोड़ा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हम अक्षर ही लिखते हैं न कि वर्ण और इसीलिये हमने 'अक्षरमाला' शब्द का व्यवहार किया है। यद्यपि अक्षरों का निर्माण वर्णों से होने के कारण वर्णों की ही लिपि (ध्वनिरूप अक्षरों का स्मरण कराने वाले रेखारूप चिह्न) होनी चाहिये। तथापि स्वर-परतन्त्र व्यञ्जनों का

---

(१) स्वयं राजन्त इति स्वराः। (२) अन्वग् भवति व्यञ्जनम्।

उच्चारण स्वत. नहीं किया जा सकता अतः अक्षरों के ही चिह्न 'लिपि' नाम से कल्पित किये गये हैं । इसलिए भाषा में वर्णों का ही प्रयोग किया जाता है अक्षरों का नहीं । यदि श्री लिखना होगा तो Sri ये तीन वर्ण लिखे जायेंगे।

जिसका विभाग न हो सके ऐसे एक नाद (ध्वनि) को 'वर्ण' कहते हैं। केवल अथवा व्यञ्जन मिश्रित स्वर को 'अक्षर' कहते हैं । यह वर्ण और अक्षर में परस्पर भेद है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि केवल स्वर के वर्ण या अक्षर दोनों नाम हो सकते हैं । केवल व्यञ्जन वर्ण ही होता है । लिपि में अपने अपने चिह्नों से केवल स्वरों का निर्देश किया जाता है, व्यञ्जन मिश्रित स्वरों का निर्देश करने के लिये अन्य चिह्न कल्पित किये गये हैं । यथा —

क् + अ = क	क् + उ = कु	क् + ए = के
क् + आ = का	क् + ऊ = कू	क् + ऐ = कै
क् + इ = कि	क् + ऋ = कृ	क् + ओ = को
क् + ई = की	क् + ॠ = कॄ	क् + औ = कौ

इत्यादि । 'क्' इसके समान व्यञ्जनों के नीचे तिरछी रेखा, उनसे स्वरांश की पृथकता को सूचित करती है । यद्यपि लोक में अक्षरों का व्यवहार होता है तथापि वैयाकरण वर्णों का ही व्यवहार करते हैं । इसलिये 'क' 'कि' 'कु' इत्यादि लिपियाँ एक २ अक्षर का बोध कराने पर भी दो वर्णों से निर्मित मानी जाती हैं । अतएव इनको व्याकरण में दो वर्ण माना जाता है ।

अक्षर-विभाग (स्वर-विभाग)

वर्णों के स्वर तथा व्यञ्जन ये दो महाविभाग प्रथम कहे जा चुके हैं । उच्चारण काल की मात्रा के अनुसार स्वर तीन प्रकार के हैं—

१—एक मात्रा से अ, इ, उ इत्यादि के समान जिनका उच्चारण किया जाय वे ह्रस्व स्वर कहाते हैं ।

२—आ, ई, ऊ इत्यादि के समान दो मात्राओं से उच्चार्यमाण स्वर दीर्घ स्वर कहाते हैं ।

३—अ ३, इ ३, उ ३ इत्यादि के समान तीन मात्राओं से उच्चार्यमाण प्लुत स्वर कहे जाते हैं ।

इन वर्णों में ह्रस्व तथा दीर्घ वर्णों से ही पद बनाये जाते हैं । इन स्वरों में

ऌ' वर्ण का प्रयोग बहुत कम होता है। दीर्घ तो कहीं भी प्रयुक्त नहीं होता है। ए, ऐ, ओ, औ इन चार वर्णों के ह्रस्व हिन्दीभाषा में प्रयुक्त होने पर भी संस्कृत में उपयुक्त नहीं है। शेष अ, इ, उ, ऋ ये चार ही तीनों प्रकारके काम में लाये जाते हैं।

व्यञ्जन-विभाग

स्वरों के समान व्यञ्जनों में जाति भेद नहीं है। उनका विभाग उनको समुदाय से पृथक् करके पृथक् पृथक् नाम रखना ही है। उनमें से क से म पर्यन्त २५ वर्ण 'स्पर्श' अथवा 'वर्ग' कहे जाते हैं। य र ल व (४) 'मध्यम' अथवा 'अन्तस्थ' और श ष स ह ये चार वर्ण 'ऊष्म' कहे जाते हैं। स्पर्श अक्षरों में पाँच वर्णों का एक २ वर्ग माना गया है। अत पाँच वर्ग होते हैं और वे कवर्ग, चवर्ग इत्यादि आदि वर्ण के नाम से पुकारे जाते हैं।

इन वर्गों के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, वर्ण तथा मध्यम वर्ण मृदु व्यञ्जन कहाते हैं, शेष कठोर व्यञ्जन।

व्याकरण शास्त्र मे वर्णों के कुछ सांकेतिक नाम रखे गये हैं जिनको 'प्रत्याहार' कहते हैं। उनमें से मुख्य २ अत्युपयोगी कुछ 'सांकेतिक' * नीचे दिये जाते है --

१--अल्--समस्त वर्ण।
२--अच्--स्वर मात्र।
३--अक्--अ इ उ ऋ ऌ।
४--हल्--सम्पूर्ण व्यञ्जन।
५--हश्--मृदु व्यञ्जन।
६--अश्--सम्पूर्ण स्वर तथा मृदु व्यञ्जन।
७--यण्--अन्तस्थ वर्ण।
८--यर्--हकार के अतिरिक्त समस्त व्यञ्जन।
९--यय्--ऊष्माक्षरों के अतिरिक्त शेष व्यञ्जन।
१०--झल्--वर्गों के पञ्चमाक्षर रहित व्यञ्जन।

* सांकेतिक नामों को स्कूल में छात्रों को भी ध्यान से याद कर लेना उनको सन्धि नियम याद करने में सरलता होगी।

११—झय्—अनुनासिक तथा ऊष्माक्षर रहित समस्त व्यञ्जन।

१२—खर्—वर्गों के प्रथम द्वितीयाक्षर तथा श ष स।

स्थान विचार

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। इचुयशानां तालु। उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। ऋटुरषाणां मूर्धा। लृतुलसानां दन्ताः। एदैतोः कण्ठतालु। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। वकारस्य दन्तोष्ठम्। ञमङणनानां नासिका च। नासिकानुस्वारस्य। विसर्गसूचक विसर्जनीय, जिसका उच्चारण अर्धहकार के सदृश किया जाता है। पदान्त में उसका उच्चारण भेद है। अर्ध मकार के सदृश ध्वनि विशेष 'अनुस्वार' कहा जाता है। विसर्ग और अनुस्वार कोई स्वतन्त्र वर्ण नहीं हैं क्योंकि इनसे किसी पद का निर्माण नहीं होता, केवल स्वरों के अन्त में उनका प्रयोग होता है। अतएव इनका वर्णमाला में पाठ नहीं है। वर्णों का स्थान विभाग निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है—

स्वर	कण्ठ	तालु	ओष्ठ	मूर्धा	दन्त	कण्ठतालु	कण्ठोष्ठ
	अ	इ	उ	ऋ	लृ	ए ऐ	ओ औ
खर	क	च	प	ट	त		
अतिखर	ख	छ	फ	ठ	थ		
मृदु	ग	ज	ब	ड	द		
घोष	घ	झ	भ	ढ	ध		
अनुनासिक	ङ	ञ	म	ण	न		
मध्यम		य	व	र	[illegible]		
ऊष्म	ह	श		ष	स		

प्रयत्न विचार

सम्पूर्ण वर्ण मुख गत उन उन स्थानों से श्वास निकलने से उत्पन्न होते हैं, अतः श्वास प्रक्षेपण के लिये किया हुआ प्रयास ही 'प्रयत्न' शब्द से [illegible]

होता है। वह दो प्रकार का है—आभ्यन्तर और बाह्य। प्रथम आभ्यन्तर प्रयत्नों का विचार किया जाता है—स्वरों के उच्चारण में श्वासवायु स्वच्छन्दता से (बिना किसी रुकावट) के निकलता है अतः स्वरों का 'विवृत' प्रयत्न है। व्यञ्जनों के उच्चारण में श्वास अन्दर नियन्त्रित हो जाता है और बाहर नहीं निकलता, इसी कारण व्यञ्जनों का उच्चारण स्वतन्त्र नहीं हो सकता (स्वर की सहायता बिना) यह कहा गया है। ऊष्माक्षरों के उच्चारण में भी श्वास कुछ थोड़ा सा निकलता है, इसलिये उनका 'ईषद्विवृत' प्रयत्न है। स्पर्शाक्षर (क से म पर्यन्त) उन उन स्थानों में वायु के बल के साथ स्पर्श होने से उत्पन्न होते हैं, अतः उनका स्पृष्ट प्रयत्न है। और इसी कारण उनकी 'स्पर्श' संज्ञा है। अन्तस्थ वर्णों के उच्चारण में श्वास वायु का थोड़ा ही स्पर्श होता है, अतः उनका 'ईषत्स्पृष्ट' प्रयत्न है। इस प्रकार 'विवृत' 'ईषद्विवृत' 'स्पृष्ट' और 'ईषत्-स्पृष्ट' ये चार आभ्यन्तर प्रयत्न हैं। स्वरों में ह्रस्व अकार का संवृत प्रयत्न माना जाता है। बाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का होता है। उसी के आधार पर वर्णों के 'खर' आदि भेद किये गये हैं। ये अत्यन्त उपयुक्त नहीं हैं, अतः इनका यहाँ विस्तृत उल्लेख नहीं किया जाता है।

उक्त स्थान और प्रयत्न जिन वर्णों के परस्पर समान होते हैं वे 'सवर्ण' कहलाते हैं। स्थान और प्रयत्न की सहायता होने पर भी अच् और हल् (स्वर और व्यञ्जन) सवर्ण नहीं माने जाते। इसका सारांश यह है—स्थान और प्रयत्न रूप उपाधि के द्वारा जिन वर्णों के अनेक भेद हो जाते हैं, उन वर्णों में वे सब भेद परस्पर सवर्ण माने जाते हैं। इस प्रकार के भेद स्वर और अन्तस्थ वर्णों के ही होते हैं। इसलिये एक ही स्वर के ह्रस्व, दीर्घ आदि भेद सवर्ण होते हैं। इसी प्रकार अनुनासिक और अननासिक य, व, ल वर्ण परस्पर सवर्ण हैं। सवर्ण वर्णों में एक भेद को विधान किया हुआ कार्य, अन्य को भी करना चाहिये। जैसे—अकार को जो कार्य विधान किया जाय वह आकार को भी करना चाहिये। इकार को विधान किया हुआ कार्य ईकार को भी करना चाहिये, इत्यादि। जहाँ एक ही भेद को कार्य करना अभिप्रेत होता है वहाँ पाणिनि स्वरों में 'त्' वर्ण जोड़ देते हैं। जैसे—अत्, इत्, उत् इत्यादि। इस प्रकार अ=सर्व प्रकार का अकार। अत् = ह्रस्व अकार। इ=सब प्रकार का इकार। इत्=ह्रस्व इकार इत्यादि।

परिशिष्टम् २

सन्धिप्रकरण

'सन्धि' शब्द का अर्थ मेल अथवा मिलना है, परन्तु यहाँ दो अक्षरों के मिलाने वाले कार्य सन्धि शब्द से अभिप्रेत हैं। प्रकृति प्रत्यय अथवा दो पदों के परस्पर मिलाने में पूर्व शब्द के अन्त्य वर्ण, पर शब्द के आदि वर्ण अथवा दोनों (पूर्व पर वर्णों के स्थान में) के स्थान में जो विकार उत्पन्न होते हैं। वे सन्धि कार्य कहे जाते हैं। यह विकार आदेश, आगम, द्वित्व और लोप इन में से कोई एक होता है। सन्धि तीन प्रकार की सम्भव हो सकती है।

१ पद मध्य मात्र में होने वाली,

२ पदान्त में की जाने वाली,

३ पद मध्य तथा पदान्त दोनों स्थानों में की जाने वाली सन्धि।

इनको हम क्रमश अन्तःसन्धि, बहिःसन्धि और उभयसन्धि नाम से व्यपदिष्ट करेंगे। इन म से अन्तःसन्धि का विषय बहुत न्यून है। बहिःसन्धि और उभयसन्धि का ही अधिकांश प्रयोग होता है। इन दोनों सन्धियों को भी व्यम के अनुसार 'स्वरसन्धि' 'व्यञ्जन सन्धि' और 'उभयसन्धि' नामक तीन विभाग होते हैं।

स्वर-सन्धि

जहाँ केवल स्वर मात्र में विकार होता है, उसे 'स्वर सन्धि' कहते हैं। स्वरसन्धि म उभयसन्धि ही अधिक व्यवहृत होती है। बहिःसन्धि का प्रयोग कम है।

उभर स्वर सन्धि को 'सवर्ण (समान) स्वरसन्धि' और 'असवर्ण (असमान) स्वरसन्धि' भागों में विभक्त किया जा सकता है।

सवर्ण (समान) स्वर-सन्धि

अ	इ
१ मुर + अरि = मुरारि ।	१ रवि + इन्द्र = रवीन्द्र ।
२ गुण + आढ्य = गुणाढ्य ।	२ अधि + ईशः = अधीश ।
३ महा + अर्णव = महार्णव ।	३ कुमारी + इति = कुमारीति ।
४ रमा + आलय = रमालय ।	४ नदी + ईश = नदीश ।
उ	**ऋ**
१ यदु + उद्वह = यदूद्वह ।	१ पातृ + ऋषभ = पातृषभ ।
२ वायु + ऊढ = वायूढ ।	२ पितृ + ऋणम् = पितॄणम् ।
३ वधू + उद्वह = वधूद्वह ।	३ होतृ + ऋकार = होतॄकारः ।
४ स्वभू + ऊन = स्वभूनः ।	४ नृ + ऋषि = नृषि ।

उपरि लिखित शब्दों में हम देखते हैं कि जो अक्षर पूर्व है वही पर है। और उन दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर प्रयुक्त हुआ है। अत —

नियमः-*यदि अक् (अ इ उ ऋ लृ) वर्ण से आगे वही वर्ण हो जो प्रथम हो तो उन दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर हो जाता है।

असमान स्वर-सन्धि

(१) रमा + ईशः=रमेशः। गंगा + उदकम् = गंगोदकम्। कुल + उचितम् = कुलोचितम्। महा + ऋषि =महर्षि । प्लुत + लृकार = प्लुतल्कारः।

इन उदाहरणों म अवर्ण से आगे इ, उ, ऋ, लृ वर्ण है, और 'अ' तथा उसके परवर्ती 'इ' आदि के स्थान में क्रमश ए, ओ, अर्, अल् परिवर्तन हुए हैं, अत —

नियम —यदि अवर्ण से आगे इ, उ, ऋ, लृ, इन वर्णों में से कोई वर्ण हो तो पूर्व-पर वर्णों के स्थान में क्रमश ए, ओ, अर्, अल् आदेश होते हैं। अर्थात् अ + इ = ए। अ + उ = ओ। अ + ऋ = अर्। अ + लृ = अल्।

(२) तस्य + एव=तस्यैव। महा + ओज =महौज । नृप + ऐश्वर्यम् = नृपैश्वर्यम्। घन + औत्सुक्यम् = घनौत्सुक्यम्, इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि अवर्ण से आगे ए, ओ, ऐ, औ वर्ण हैं और उनके स्थान पर क्रमशः ऐ, औ, ऐ, औ परिवर्तन हुए हैं। अतः—

---

* अक सवर्णे दीर्घ । ६।१।१०१ † आद्गुण ६।१।८७

नियम*—यदि अवर्ण से आगे ए, ऐ और ओ, औ हों तो पूर्व पर दोनों वर्णों के स्थान में क्रमशः ऐ तथा औ आदेश होते हैं। अर्थात्—अ+ए, ऐ=ऐ। अ+ओ, औ=औ।

(३) दधि+अत्र=दध्यत्र। सुधी+उदितम्=सुध्युदितम्। मधु+अर्थ=मध्वर्थम्। वधू+आनन=वध्वाननम्। पितृ+अर्थ=पित्रर्थम्। कृ+आकृति=क्राकृति। गम्ल+अर्थ=गम्ल्यर्थम्। लृ+आपत्ति=लापत्ति। प्रथम उदाहरण में दधि शब्द के अन्त में इकार है और उससे परे 'अ' है। और प्रथम वर्ण इ के स्थान में 'य' परिवर्तन देखा जाता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में उ, ऋ, लृ पूर्ववर्ण हैं, तथा उनके स्थान में क्रमशः व्, र्, ल् परिवर्तन हुए जाते हैं, इसलिये—

नियम—†यदि इक वर्ण (इ, उ, ऋ, लृ) के आगे कोई असवर्ण स्वर हो तो प्रथम वर्ण 'इ' आदि के स्थान में क्रमशः य्, व्, र्, ल् आदेश होते हैं। यह ध्यान में रखना चाहिये कि परवर्ण के स्थान में कोई परिवर्तन नहीं होता, वह केवल निमित्त मात्र होता है।

नोट :—उपर्युक्त सन्धियों में यह स्मरण रखना चाहिये कि अ आदि वर्ण ह्रस्व तथा दीर्घ दोनों ही प्रकार के लिये जाते हैं, अतः ये सन्धियाँ ह्रस्व दीर्घ वर्णों में समान रूप से प्रवृत्त होती हैं।

(४) हरे+ए=हरये। गुरो+ए=गुरवे। नै+अक=नायक। पौ+अक=पावक। उपरि लिखित उदाहरणों में देखा जाता है कि प्रथम शब्द के अन्त में क्रमशः ए, ओ, ऐ तथा औ वर्ण हैं और उनके आगे क्रमशः ए, ए, अ, अ वर्ण हैं और शब्दान्त्य वर्णों के स्थान में क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् आदेश हुए हैं। इस प्रकार—

नियम—‡यदि एच् (ए, ओ, ऐ, औ) वर्ण से परे कोई भी स्वर हो तो 'ए' के स्थान में 'अय्', 'ओ' के स्थान में 'अव्', 'ऐ' के स्थान में 'आय्' और 'औ' के स्थान में 'आव्' आदेश होता है।

नोट :—उपरि लिखित समस्त सन्धियाँ पद-मध्य तथा पद के अन्त में समान रूप से प्रवृत्त होती हैं। अतः ये 'उभयसन्धि' कहलाती हैं।

(५) नियम ४ का अपवाद-हरे+अव=हरेऽव। विष्णो+अव=विष्णोऽव।

---

*वृद्धिरेचि ६।१।८८ †इको यणचि ६।१।७७ ‡एचोऽयवायावः ६।१।७८

इन उदाहरणों में पूर्व शब्द के अन्त में 'ए' तथा 'ओ' वर्ण हैं और आगे 'अ' वर्ण है, अतः नियम ४ के अनुसार ए तथा ओ के स्थान में क्रमशः 'अय्' तथा 'अव्' आदेश होना चाहिये था, परन्तु ऐसा नहीं हुआ, इसलिये—

नियम —*यदि पद के अन्त में आये हुए ए तथा ओ वर्ण से आगे ह्रस्व 'अकार' परे हो तो ह्रस्व 'अकार' अपने से पूर्व वर्ण में मिल जाता है। आजकल उसकी पहिचान के लिये 'ऽ' चिह्न लगाते हैं। परन्तु यह केवल चिह्न मात्र है कोई वर्ण नहीं है।

(६) अग्नी + अत्र = अग्नी अत्र। वायू + इति = वायू इति। गङ्गे + अमू = गङ्गे अमू।

इन उदाहरणों में शब्दान्त में ई, ऊ, तथा ए वर्ण हैं और उनसे आगे स्वर वर्ण हैं अतः क्रमशः नियम संख्या ३ और ४ के अनुसार संधि होनी चाहिये, परन्तु होती नहीं। क्योंकि—

नियम —†यदि किसी शब्द का द्विवचनान्त रूप 'ई' 'ऊ' अथवा 'ए' में समाप्त होता हो तो ऐसे शब्द की संधि नहीं की जाती। यहाँ अग्नी, वायू और गङ्गे शब्द क्रमशः अग्नि, वायु और गङ्गा शब्द के प्रथमा विभक्ति के द्विवचनान्त रूप हैं।

हल् (व्यञ्जन)-सन्धि

दो व्यञ्जनों के परस्पर मिलने को व्यञ्जन संधि अथवा 'हल् सन्धि' कहते हैं। इस संधि के भी स्वर सन्धि के समान 'अन्तस्सन्धि', 'बहिस्सन्धि' तथा 'उभयसंधि' नामक तीन भेद होते हैं।

बहिस्सन्धि

जब किसी पूर्व पद के अन्तिम वर्ण के स्थान में अथवा पर पद के आदि वर्ण के स्थान में कोई विकार होता है, तब उसे 'बहिस्संधि' कहते हैं।

(१) वाक् + अत्र = वागत्र। गो दुघ् = गोदुग्। अच् + अन्त = अजन्तः। मित्रध्रुद् + गच्छति = मित्रध्रुड् गच्छति। ककुभ् + रम्या = ककुब्रम्या। द्विष् + राजते = द्विड्राजते। दिश् + आदि = दिगादि।

---

* एङः पदान्तादति ६।१।१०९

†ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११, प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५

हम इन उदाहरणों में देखते हैं कि प्रथम पद 'वाक्' आदि के अन्तिम व्यञ्जनों के स्थान में उसी वर्ग का तृतीय अक्षर 'ग्' आदि हुए हैं। द्वितीय पद का आदि वर्ण कोई स्वर अथवा मृदुव्यञ्जन है। इसलिये—

नियम :—*यदि किसी शब्द के अन्त में कोई झल् (वर्गों के द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अक्षर) वर्ण हो और उसके आगे कोई स्वर अथवा मृदु व्यञ्जन हो तो पूर्वपद के अन्तिम व्यञ्जन के स्थान में उसी वर्ग का तृतीय अक्षर होता है। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि झल् वर्ण के आगे कोई अक्षर न हो तो यह परिवर्त्तन विकल्प से होता है। जैसे वाक्—ग्। अच्—ज् इत्यादि।

(६) प्रत्यङ्+आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्+ईश = सुगण्णीश। लिखन्+आस्ते = लिखन्नास्ते।

उपरि लिखित उदाहरणों में पूर्व पद के अन्त में क्रमश 'ङ्' 'ण्' 'न्' वर्ण हैं। और उनके आगे 'आ' 'ई' आदि स्वर वर्ण हैं, तथा सिद्ध रूपों में एक एक 'ङ' 'ण' 'न' अक्षर बढ़ गया है। अत —

नियम :—†यदि किसी शब्द के अन्त में 'ङ' 'ण' 'न' इनमें कोई वर्ण हो, और उसके आगे कोई स्वर हो तो प्रथम वर्ण 'ङकार' आदि को द्वित्व हो जाता है। परन्तु यदि शब्दान्त्य 'ङकार' आदि वर्णों के पूर्व अक्षर ह्रस्व वर्ण न हो तो यह परिवर्त्तन नहीं होता। जैसे प्राङ्+आस्ते = प्राङास्ते। भवान्+आस्ते = भवानास्ते। अर्थात् द्वित्व किये जानेवाले ङकार आदि वर्णों के पूर्व ह्रस्व स्वर होना आवश्यक है।

(७) पदान्ते—सम्पद्+कामः = सम्पत्कामः। विराड्+पुरुष = विराट् पुरुष। तद्+चित्र = तत्+चित्र = तच्चित्रम्। तद्+टीका = तट्+टीका = तट्टीका। ककुभ्+कोण = ककुप् कोण। भिषग्+छत्र = भिषक्छत्र।

अपदान्ते—भेद्+तु = भेत्तुम्। लभ्+स्यते = लप्स्यते। पच+स्यति = पक्ष्यति।

इन उदाहरणों में हम देखते हैं, कि प्रथम शब्दों के अन्त में 'दकार' आदि झल् वर्ण हैं और उनके आगे 'क' आदि कठोर (वर्गों के प्रथम, द्वितीय,

---

* झलां जशोऽन्ते ८।२।३९ † ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८।३।३२

वर्ण तथा श ष स) वर्ण हैं, तथा 'द्' आदि वर्णों के स्थान म उसी वर्ग के प्रथमाक्षर 'त्' आदि परिवर्तित हुए हैं। इसलिये—

नियम—[1]यदि झल् वर्ण से आगे कोई कठोर वर्ण परे हो तो प्रथम झल वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का प्रथमाक्षर होता है। यह सन्धि पद मध्य में तथा पदान्त में, दोनों स्थानों में समान रूप से प्रवृत्त होती है, अत यह उभयसंधि के अन्तर्गत है। तथापि इसका प्रथम नियम के साथ विशेष सम्बन्ध होने के कारण इसको यहाँ लिखा गया है। यह प्रथम नियम का विपरीत नियम है।

(४) वाग्+माधुर्य =वाङ्माधुर्य, वाग्माधुर्यम्। चित् + मय=चिन्मयम्। अप् + मय=अम्मयम्।

ऊपर लिखित शब्दों में पूर्व पद के अन्त में झल् वर्णों में से कोई वर्ण तथा उसके आगे 'म्' आदि अनुनासिक (वर्गों के पचम वर्ण) अक्षर तथा प्रथम झल् वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का पचमाक्षर देखा जाता है।

नियम—[2]यदि प्रथम पद के अन्त में 'यर्' (हकार के अतिरिक्त समस्त व्यञ्जन) में से कोई वर्ण हो और उसके आगे किसी वर्ग का पचमाक्षर परे हो तो उस 'यर्' वर्ग के स्थान में उसी वर्ग का पञ्चमाक्षर होता है। परन्तु यह नियम विकल्प से प्रवृत्त होता है, अर्थात् उपर्युक्त परिवर्तन किया जाय अथवा न किया जाय, दोनों ही ठीक हैं।

(५) इदम् + वनम् = इदंवनम्। सायम् + सध्या=सायंसध्या। किम् + हसति = किंहसति। सम् + रक्तम्=संरक्तम्।

उपर्युक्त उदाहरणों म 'इदम्' आदि मकारान्त पद हैं, और उस मकार से परे व्यञ्जन वर्ण हैं। उस मकार के स्थान में अनुस्वार देखा जाता है, अत —

नियम —[3]यदि पदान्त मकार से पर कोई हल् वर्ण हो तो मकार के स्थान में अनुस्वार हो जाता है। यदि पदान्त मकार से आगे कोई स्वर वर्ण हो तो उस मकार को परवर्ती अच् में मिला देते हैं जैसे—

इदम्+अरण्यम्=इदमरण्यम्। सुखम् + इति=सुखमिति।

(६) तद् + लयम् = तल्लयम्। चित् + लय =चिल्लय। तस्मिन्+ लय = तस्मिँल्लय।

---

१ खरि च ८।४।५३ २ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५
३ मोऽनुस्वार ८।३।२३

उपर्युक्त शब्दों में 'द्' 'त्' 'न्' वर्णों से आगे 'ल' वर्ण है, और 'द्' आदि वर्णों के स्थान में 'ल्' दिखाई देता है, अतः —

नियम —[1]यदि तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) से ल वर्ण परे हो तो तवर्ग के स्थान में ल् हो जाता है। यह ध्यान में रखना चाहिये, कि 'न्' अनुनासिक वर्ण है अतः उसके स्थान में 'ल्ँ' होता है और शेष चार वर्णों के स्थान में 'ल्' होता है।

अन्तरसन्धि

(७) मुन् + चति = मुंचति = मुञ्चति । शन् + कते = शंकते = शङ्कते । शम् + युः = शंयु = शँय्यु ।

उपर्युक्त शब्दों के द्वितीय रूप में अनुस्वार से आगे क्रमशः 'च' 'क' 'य' वर्णों के परे होने पर तृतीय रूप में अनुस्वार का क्रमशः ञ् ङ् और यँ् परिवर्तित रूप देखा जाता है। इसलिये—

नियम —[2]यदि अनुस्वार से आगे कोई 'यय्' (ऊष्माक्षर रहित व्यञ्जन) वर्ण हो तो उस अनुस्वार के स्थान में पर वर्ण के वर्ग का पञ्चमाक्षर होता है। परन्तु 'य' 'व्' 'ल्' परे होने पर अनुनासिक 'यँ्' 'वँ्' 'लँ्' होते हैं। प्रथम उदाहरण—'मुञ्चति' में अनुस्वार से आगे 'च' है और यह वर्ण 'चवर्ग' का प्रथमाक्षर है। अतः अनुस्वार के स्थान में 'चवर्ग' का पञ्चमाक्षर ञ् हुआ है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये।

यदि अनुस्वार किसी पद के अन्त में आया हो तो उसके स्थान में यह परिवर्तन विकल्प[3] से होता है। जैसे—

त्वं + करोषि = त्वङ्करोषि, त्वं करोषि ।

त्वं + याचसे = त्वय्ँयाचसे, त्वं याचसे ।

त्वं + पचसि = त्वम्पचसि, त्वं पचसि ।

सं + वत्सर = सम्वत्सर, संवत्सर ।

पुं + लिङ्ग = पुँल्लिङ्ग, पुंलिङ्ग ।

(८) पयान् + सि = पयांसि । धनून् + षि = धनूंषि । आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते । अधिजिगाम् + सति = अधिजिगांसति ।

---

१ तोर्लि ८।४।६०   २ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८

३ वा पदान्तस्य ८।४।५९

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम उदाहरण 'पयांसि' एक पद (प्रथमा बहुवचन) है। इसके मध्य में 'न्' वर्ण है उस 'न्' के आगे 'स्' हल् वर्ण है। उस नकार को अनुस्वार हुआ है। इसी प्रकार 'आक्रंस्यते' यह भी एक पद (लट्, प्रथम पुरुष, एक वचन) है। उसके मध्य में 'म्' वर्ण है जिसको अनुस्वार हुआ है। अत —

नियम—[1]यदि पद मध्य में 'न्' अथवा 'म्' वर्ण हो और उनके आगे कोई हल् वर्ण हो तो उनके स्थान में अनुस्वार हो जाता है।

उभय-सन्धि

पीछे लिखा जा चुका है कि जिन सन्धियों में पद मध्य अथवा पदान्त का विचार नहीं किया जाता—दोनों स्थानों में समान रूप से प्रवृत्ति होती है—वे उभयसन्धि कहाती हैं।

(९) पयस् + शीत = पयश्शीतम्। राजन् + जय = राजञ्जय।
तपस् + चिनोति = तपश्चिनोति। वृक्षस् + छिद्यते = वृक्षश्छिद्यते।
सत् + चित् = सच्चित्। तद् + ज्ञान = तज्ज्ञानम्।
परिषद् + जन = परिषज्जन। यज + न = यज्ञ।

यहाँ प्रथम उदाहरण में 'पयस्' शब्द के सकार से आगे 'श्' वर्ण है अत यहाँ 'स' वर्ण को 'श्' वर्ण हुआ है। इसी प्रकार 'सत् + चित्' इत्यादि शब्दों म तवर्ग वर्ण के स्थान में चवर्ग का कोई अक्षर हुआ है। अत —

नियम —[2]यदि सकार और तवर्ग के समीप में (पूर्व अथवा पर) 'श्' अथवा चवर्गान्तर्गत कोई वर्ण हो तो 'स्' के स्थान में 'श्' और तवर्ग के स्थान में क्रमश चवर्ग होता है।

विशेष स्मरणीय—यहाँ सकार और तवर्ग स्थानी और 'श्' तथा चवर्ग आदेश हैं। इनमें क्रम विवक्षित है परन्तु निमित्त वर्ण (समीप वाले वर्ण) में क्रम विवक्षित नहीं है। अर्थात् 'श्' तथा चवर्ग में से किसी भी वर्ण के समीपस्थ होने पर उपर्युक्त आदेश होते हैं।

(१०) महस् + षण्डः = महष्षण्ड। रामस् + टीकते = रामष्टीकते। उत् + टङ्कनम् = उट्टङ्कनम्। महान् + डीकते = महाण्डीकते। पिष् + त = पिष्टम्। तद् + डिण्डिम = तड्डिण्डिमम्॥

---

१ नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४ २ स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०

नियम —[1]यदि 'स्' और तवर्ग के समीप 'ष्' कार अथवा टवर्ग में से कोई वर्ण हो तो सकार और तवर्ग को क्रमशः षकार और टवर्ग होता है। इस नियम के विषय में नियम ९ के समान सब बातें समझनी चाहिये।

(११) अपवाद—(षड् + सन्त) षट् + सन्त = षट्सन्तः। षट् + तरव = षट्तरव। सम्राड् + दयते = सम्राड्दयते।

हम इन उदाहरणों में देखते हैं कि 'स्', 'त्', 'द्' वर्णों के 'ट्', 'ट्' 'ड्' वर्ण समीप होने पर भी नियम सं० १० लागू नहीं हुआ। इसलिये —

नियम —[2]यदि पदान्त टवर्ग से परे सकार और तवर्ग हों तो उनके स्थान में षकार और टवर्ग आदेश नहीं होते।

(१२) प्राक् + शेते = प्राक्छेते, प्राक् शेते। कश्चित् + शेते = कश्चिच्छेते, कश्चिच्छेते, कश्चिच्शेते। अप् + शब्द = अप्छब्दः, अप्शब्द। दिट् + शम = दिट्छम दिट्शमम्। तद् + श्लोक = तच्छ्लोक = तच्श्लोक। तद् + श्मश्रु = तच्छ्मश्रु, तच्श्मश्रु।

नियम —[3]यदि झय् (वर्गों के पञ्चमाक्षर तथा ऊष्माक्षर रहित व्यञ्जन) वर्ण से परे शकार हो और उसके आगे स्वर, अन्तःस्थ अथवा वर्गों के पंचमाक्षर में से कोई वर्ण हो तो उस 'श्' को 'छ्' विकल्प से होता है।

(१३) तुग्विधि—[4]तुग्विधि (तुगसन्धि) का आशय यह है कि यदि वाक्य के मध्य में छकार आये तो उस छकार को द्वित्व हो जाता है, और प्रथम छकार को 'खरि च' सूत्र से (हल्सन्धि नियम सं० २) 'च्' हो जाता है। परि + छिन्न = परिच्छिन्न। तरु + छाया = तरुच्छाया। आ + छादनम् = आच्छादनम्। वि + छेद = विच्छेद।

परन्तु यदि वाक्य के आदि में छकार हो तो उसे द्वित्व नहीं होता। जैसे—'छन्नोपान्त परिणतफलज्योतिभिः काननाम्रै'। तात्पर्य यह है कि वाक्य के आदि में हो केवल छकार का प्रयोग होता है अन्यत्र सर्वत्र 'छ्' को द्वित्व होकर प्रथम छकार को चकार हो जाता है।

---

१. ष्टुना ष्टुः ८।४।४१ २ न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२ ३ शश्छोऽटि ८।४।६३ ४ छे च ६।१।७३ आङ्माङोश्च ६।१।७४ दीर्घात् ६।१।७५ पदान्ताद्वा ६।१।७६ इत्यष्टाध्यायीति भाष्यम् (सा०)

इस प्रकरण की मुख्य मुख्य सन्धियाँ निम्न कारिकाओं में सगृहीत की जाती हैं। छात्रों को उन्हें याद कर लेना चाहिये।

> झलां जशोऽन्ते झशि च, खर्येषां सर्वदा चरः।
> स्तोः श्चुना श्चुः, ष्टुना ष्टुश्च द्वयमप्यन्तमध्ययोः ॥ १ ॥
> झयि पूर्वे तस्य घोषो, झयः शोऽमिच्छता व्रजेत्।
> तोर्लि लो, हलि मो बिन्दुः पञ्चमे पञ्चमो यरः।
> झय्यनन्ते नमोर्बिन्दुर्बिन्दोर्यय्यनुनासिकः ॥ २ ॥
> अवाक्यादिस्यसंयोगे द्विर्वाच्यो वर्ण आदिमः।
> रहाद्दौ तु परद्वित्वं द्विर्वाच्यश्छोऽप्यनादिमः ॥ ३ ॥

—•०•—

विसर्ग सन्धि प्रकरण

यद्यपि इस सन्धि का नाम विसर्ग सन्धि है तथापि यह 'स' तथा 'र' वर्ण पर आश्रित है। पदान्त सकार भी 'र्' वर्ण में परिवर्तित होता है, उस 'र' वर्ण का परिवर्तन कहीं विसर्ग = ':' रूप में होता है और कहीं यह अपने असली रूप में रहता है। विसर्ग भी कहीं-कहीं फिर 'स्' आदि रूपों में परिवर्तित हो जाता है। परन्तु छात्रों की सुगमता के लिये विसर्ग को ही मुख्य मानकर इस सन्धि के नियमों का निर्देश करेंगे।

(१) पुनर् = पुनः। उच्चैस् = उच्चैर् = उच्चैः।
पितुर् = पितुः। अन्तर् = अन्तः।
दोस् = दोर् = दोः। प्रातर् = प्रातः।

नियम —[2] यदि विसर्ग के आगे कोई वर्ण न हो तो विसर्ग को कोई परिवर्तन नहीं होता (अर्थात् उक्त दशा में रेफ को विसर्ग हो जाता है और उस विसर्ग को फिर कोई परिवर्तन नहीं करते)।

गोविन्दः + अहम् = गोविन्दोऽहम्। रामः + अत्र = रामोऽत्र। [अ + विसर्ग + अ[3] = ओऽ।] अश्वः + धावति = अश्वो धावति। बालः + जल्पति = बालो जल्पति। [अ + विसर्ग + मृदुव्यञ्जनम् = ओ।][4] यदि विसर्ग से पूर्व

---

१. ससजुषो रुः ८।२।६६
२ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५ विरामोऽवसानम् १।४।११०
३ अतो रोरप्लुतादप्लुते ६।१।११३ ४, हशि च ६।१।११४

और विसर्ग के पश्चात् वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें तथा य, र, ल, व, ह, में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग का 'ओ' हो जाता है।

[1]सूर्य + उदेति = सूर्य उदेति। धन + इच्छति = धन इच्छति। नृप + ऐश्वर्यम् = नृप ऐश्वर्यम्। वैद्य + औषधम् = वैद्य औषधम्। वृद्ध + ऋषि = वृद्ध ऋषि। छात्र + एष = छात्र एष। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि यहाँ विसर्ग का लोप हुआ है। अत जहाँ विसर्ग से पूर्व अ, और विसर्ग के बाद अकार भिन्न कोई स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है।

[2]राम + पश्यति=राम पश्यति। राम + करोति=राम करोति। इत्यादि उदाहरणों में विसर्गों को कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अत जिन वाक्यों में विसर्ग से पूर्व 'अ' तथा विसर्ग के बाद क, ख, और प, फ, में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग को विसर्ग ही रहता है।

[3]मृग + चरति=मृगश्चरति। नर + तरति=नरस्तरति। पुरुष + छत्रम्=पुरुषश्छत्रम्। राम + टीकते=रामष्टीकते। विसर्ग को यदि विसर्ग से पूर्व अ, तथा विसर्ग से परे च, छ में से कोई वर्ण हो, तो विसर्ग को 'श्' और विसर्ग के बाद ट, ठ में से कोई हो तो 'ष्' तथा जहाँ त, थ, में से कोई हो तो 'स्' होता है।

[4]कुमार + सरति=कुमारःसरति, कुमारस्सरति। बाल + शालां=बालः शालां, बालश्शालाम्। छात्र + षट् पुष्पाणि = छात्रः षट् पुष्पाणि, छात्रष्षट् पुष्पाणि। यदि विसर्ग से पूर्व अ, तथा उ के बाद स, श अथवा ष में से कोई वर्ण हो तो क्रमश विसर्ग के स्थान में विकल्प से 'स्' 'श्' तथा 'ष' होता है अन्यथ जहाँ ये आदेश नहीं होते वहाँ कोई विसर्ग के स्थान में परिवर्तन नहीं होता।

[5]स एष कुमारः=स एष कुमारः। स एषः हस्त =स एष हस्त। स एष उष्ट्र. = स एष उष्ट्र। स अहम्=[1]सोऽहम्। एष अहम्=एषोऽहम्।

---

१ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८।३।१७ लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९

२ खरवसानयो० ३ विसर्जनीयस्य स ८।३।३४

४ वा शरि ८।३।३६ स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०

५ एततदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६।१।१३२ सामान्यतो० अतो रोरप्लुतात्०।

यदि 'स' अथवा 'एष' शब्द के आगे कोई व्यञ्जन अथवा 'अ' भिन्न स्वर परे हो तो इनके विसर्ग का लोप हो जाता है परन्तु यदि इनसे अकार परे हो तो विसर्ग को 'ओ' हो जाता है।

(२) कुमाराः + अत्र तिष्ठन्ति=कुमारा अत्र तिष्ठन्ति। मृगाः + उपविश न्ति = मृगा उपविशन्ति। बालाः + इच्छन्ति = बाला इच्छन्ति। नृपाः + एव प्रजाः + रक्षन्ति=नृपा एव प्रजा रक्षन्ति। जनाः + गच्छन्ति = जना गच्छन्ति। [आ + विसर्ग + स्वर = विसर्गस्य लोपः] [आ + विसर्ग + मृदुव्यञ्जनम्= विसर्गस्य लोपः]

अश्वाः + कर्षन्ति = अश्वाः कर्षन्ति। नराः + पालयन्ति = नराः पालयन्ति आ + विसर्ग + क्, ख्, अथवा प्, फ्, तो कोई विकार नहीं होता]

मत्स्याः + तरन्ति=मत्स्यास्तरन्ति। बलीवर्दाः + चरन्ति। बलीवर्दाश्चरन्ति। लेखकाः + टीकन्ते = लेखकाष्टीकन्ते [आ + विसर्ग। त्, थ्, स्। आ + विसर्गः + च्, छ् = श्। आ + विसर्ग = ट्, ठ् = ष।]

(३) मुनिः + भवति=मुनिर्भवति। धेनुः + यच्छति=धेनुर्यच्छति। कवेः + बुद्धिः=कवेर्बुद्धिः। गुरोः + गृहम्=गुरोर्गृहम्। सप्तभिः + अपूर्वैः + सप्तभिरपूर्वैः। वस्त्रैः + आवृतम्=वस्त्रैरावृतम्। पितुः + इच्छा। पितुरिच्छा। नृपतेः + उद्यानम्=नृपतेरुद्यानम्। ['अ' अथवा 'आ' को छोड़कर कोई स्वर + विसर्ग + मृदु-व्यञ्जन अथवा स्वर=विसर्ग के स्थान में रेफ होता है]

(४) धेनुः + चरति = धेनुश्चरति। रविः + तपति = रविस्तपति। कवेः + टीका=कवेष्टीका। नृपतेः + छत्र=नृपतेश्छत्रम्। [कोई स्वर + विसर्ग + च्, छ् = श्। कोई स्वर + विसर्ग। त्, थ्=स्। कोई स्वर + विसर्ग + ट्, ठ्=ष्]

वायुः + प्रीणाति=वायुः प्रीणाति। तरोः + फलम्=तरोः फलम्। ऋषेः + कार्यम्=ऋषेः कार्यम्। कपिः + खनति = कपिः खनति [कोई स्वर + विसर्ग + क्-ख्+प्-फ्=कोई परिवर्तन नहीं होता]

संक्षेप में हम इस संधि को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं—

१ (अ) यदि विसर्ग से पूर्व कोई भी स्वर हो और उसके बाद 'क्' 'ख्' अथवा 'प्' 'फ्' में से कोई भी वर्ण हो तो विसर्ग को कोई परिवर्तन नहीं होता।

(आ) यदि 'च' 'छ' परे हों तो विसर्ग को 'श्' होता है।

(इ) यदि 'ट्' 'ठ्' परे हों तो विसर्ग को 'ष' होता है।

(ई) यदि 'त्' 'थ्' परे हों तो 'स्' होता है।

२ (अ) यदि विसर्ग से पूर्व 'अ' हो और उसके बाद कोई स्वर अथवा मृदु व्यञ्जन हो तो विसर्ग को 'ओ' हो जाता है।

(आ) यदि विसर्ग से पूर्व 'अ' अथवा 'आ' हो और उसके उत्तर अकार भिन्न कोई स्वर अथवा मृदुव्यञ्जन हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है।

३. यदि विसर्ग से पूर्व 'अ' 'आ' के अतिरिक्त कोई स्वर हो और उसके बाद कोई स्वर अथवा मृदुव्यञ्जन हो तो विसर्ग को 'र' होता है। अर्थात् र् को विसर्ग नहीं होता वह अपने असली रूप में ही रहता है।

(५) स्वर् + राज्यम्=स्वराज्यम्, स्वाराज्यम्। निर् + राग = निराग, नीराग। दुर् + रक्त = दुरक्तम्, दूरक्तम्। वपुस + रम्यम्=वपुर् रम्य वपु रम्य वपू रम्यम्।

इन उदाहरणों में दो रेफ पास पास आते हैं परन्तु सिद्ध रूपों में प्रथम रेफ दिखलाई नहीं पड़ता है और उससे पूर्ववर्ति स्वर अपने दीर्घ रूप में दिखलाई पड़ता है। अत —

नियम —*यदि रेफ से परे रेफ हो तो पूर्व रेफ का लोप हो जाता है और उस रेफ से पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है।

संग्रहकारिका —

विसर्गो रस्यावसाने कमो चर्त्वं च वा तथा।
पदान्ते सस्य रुत्वं स्यादिमाद्याशषितच्छविः॥
असि रोरति इत्युत्वम्, आमासो रामि वेगि गः।
लघुप्रयत्नो वा लोऽयम्, आसिलोपोऽतिदृश्यवि॥
रोरिलोपे पूर्वदीर्घो, रो विसर्गः कपौ खफौ।
तत्र ≍क≍पौ च वा स्याता, शर्विसर्गो तथा शरि॥
विसर्गस्य सकार स्यात् कुपुभिन्ने परे खरि।
स्पष्ट चास्य स्फुटप्रयोगे, तस्मात् सत्त्वेन स शुद्धिः॥

— • —

* रो रि ८।३।१४ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११

सुवन्त प्रकरण

व्याकरण-पाठ

नाम (अजन्त अथवा स्वरान्त)

अकारान्त पुँल्लिङ्ग(१)राम-शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राम	रामौ	रामा
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामै
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्य
पञ्चमी	रामात् द्	रामाभ्याम्	रामेभ्य
षष्ठी	रामस्य	रामयो	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयो	रामेषु
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामा॰

(एवमेव ब्राह्मण , जनक , आचार्य , सूर्य , सिंह , इत्यादि)

अकारान्त नपुसकलिङ्ग(२) 'वन'-शब्द ।

प्रथमा	वनम्	वने	वनानि
द्वितीया	वनम्	वने	वनानि
तृतीया	वनेन	वनाभ्याम्	वनैः
चतुर्थी	वनाय	वनाभ्याम्	वनेभ्य
पञ्चमी	वनात् द्	वनाभ्याम्	वनेभ्य
षष्ठी	वनस्य	वनयो	वनानाम्
सप्तमी	वने	वनयो	वनेषु
सम्बोधन	हे वन	हे वने	हे वनानि

(एव फलम् अरण्य, नगर, मुख, तृणम् , अस्त्र, सुवर्ण , मित्रम्–आदि)

नोट.—सुबन्त='सुप' जिसके अन्तमें हो उसे सुबन्त कहते हैं ।

(१) विभक्ति प्रत्यय–पुल्लिङ्ग में—

स् औ अस् (प्रथमा) अम औरं आन् (द्वितीया) इन् भ्या ऐस् (तृतीया) य भ्याम भ्यस् (चतुर्थी) आत् भ्याम् भ्यस (पञ्चमी)स्यओस् नाम् (षष्ठी)इ ओस् सु (सप्तमी–) ओ अस् (स०)

(२) विभक्ति प्रत्यय–नपुसकलिङ्ग में—

म ई आनि (प्रथमा) म ई आनि (द्वितीया)

तृतीया से अन्त तक पुल्लिङ्ग 'राम' शब्द के समान जानो ।

इकारान्त पुल्लिङ्ग मुनि शब्द (१)				नपुंसकलिङ्ग वारि शब्द (२)		
मुनि	मुनी	मुनयः	(प्र०)	वारि	वारिणी	वारीणि
मुनिम्	मुनी	मुनीन्	(द्वि०)	वारि	वारिणी	वारीणि
मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः	(तृ०)	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः	(च०)	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
मुनेः	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः	(पं०)	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
मुनेः	मुन्योः	मुनीनाम्	(ष०)	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
मुनौ	मुन्योः	मुनिषु	(स०)	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
हे मुने	हे मुनी	हे मुनयः	(सं०)	हे वारे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि
[एवं हरि, कवि, अतिथि इत्यादि]				(एवं सुरभि, शुचि, इत्यादि)		

उकारान्त पुल्लिङ्ग गुरु शब्द				नपुंसकलिङ्ग मधु शब्द		
गुरुः	गुरू	गुरवः	(प्र०)	मधु	मधुनी	मधूनि
गुरुम्	गुरू	गुरून्	(द्वि०)	मधु	मधुनी	मधूनि
गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः	(तृ०)	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः	(च०)	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
गुरोः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः	(पं०)	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
गुरोः	गुर्वोः	गुरूणाम्	(ष०)	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
गुरौ	गुर्वोः	गुरुषु	(स०)	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
हे गुरो	हे गुरू	हे गुरवः	(सं०)	हे मधु-धो	हे मधुनी	हे मधूनि
[एवं भानु, साधु, वायु, इत्यादि]				[एवं वस्तु, अम्बु, पशु इत्यादि]		

(१) विभक्ति प्रत्यय-पुल्लिङ्ग में—

स—अस् (प्रथमा)

म्—न् (द्वितीया)

ना भ्याम् भिस् (तृतीया)

ए भ्याम् भ्यस् (चतुर्थी)

अस ,, ,, (पञ्चमी)

अस् ओस् नाम् (षष्ठी)

औ ,, सु (सप्तमी)

— — अस् (सम्बोधन)

(२) विभक्ति-प्रत्यय नपुंसकलिङ्ग में—

—ई इ (प्रथमा)

—ई इ (द्वितीया)

ना भ्याम भिस् (तृतीया)

(चतुर्थी) (पञ्चमी) (षष्ठी)

पुल्लिङ्ग के 'मुनि' शब्द के समान हैं

इ ओस सु (सप्तमी)

—ई इ (सम्बोधन)

ऋकारान्त पुल्लिङ्ग 'नेतृ' शब्द				पुं 'पितृ शब्द'		
नेता	नेतारौ	नेतारः	(प्र०)	पिता	पितरौ	पितरः
नेतारम्	नेतारौ	नेतॄन्	(द्वि०)	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
नेत्रा	नेतृभ्याम्	नेतृभिः	(तृ०)	शेष रूप 'नेतृ'		शब्द के
नेत्रे	नेतृभ्याम्	नेतृभ्यः	(च०)	समान होंगे।		
नेतुः	नेतृभ्याम्	नेतृभ्यः	(पं०)			
नेतुः	नेत्रोः	नेतॄणाम्	(ष०)			
नेतरि	नेत्रोः	नेतृषु	(स०)			
हे नेतः	हे नेतारौ	हे नेतारः	(सं०)	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

नपुंसकलिङ्ग 'कर्तृ' शब्द				स्त्रीलिङ्ग 'माला' शब्द (१)		
कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि	(प्र०)	माला	माले	मालाः
कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि	(द्वि०)	मालाम्	माले	मालाः
कर्त्रा कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	(तृ०)	मालया	मालाभ्याम्	मालाभिः
कर्त्रे कर्तृणे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः	(च०)	मालायै	मालाभ्याम्	मालाभ्यः
कर्तुः कर्तृणः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः	(पं०)	मालायाः	मालाभ्याम्	मालाभ्यः
,, कर्तृणः	कर्त्रोः कर्तृणोः	कर्तॄणाम्	(ष०)	मालायाः	मालयोः	मालानाम्
कर्तरि कर्तृणि	,, कर्तृणोः	कर्तृषु	(स०)	मालायाम्	मालयोः	मालासु
हे कर्तः कर्तृ	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि	(सं०)	हे माले	हे माले	हे मालाः

एवं दातृ, गन्तृ, द्रष्टृ इत्यादि] [एवं कथा, शाला, क्रीडा, देवता आदि]

इ० स्त्रीलिङ्ग 'भूमि' शब्द।				ई० स्त्रीलिङ्ग 'नदी' शब्द (२)		
भूमिः	भूमी	भूमयः	(प्र०)	नदी	नद्यौ	नद्यः

---

(१) विभक्ति-प्रत्यय—

—	ई	अस्	(प्रथमा)
आम्	ई	,,	(द्वितीया)
आ	भ्याम्	भिस्	(तृतीया)
ए	,,	भ्यस्	(चतुर्थी)
अस्	,,	,,	(पञ्चमी)
,,	ओस्	नाम्	(षष्ठी)
आम्	,,	सु	(सप्तमी)
—	ई	अस्	(सम्बोधन)

(२) विभक्ति-प्रत्यय—

—	औ	अस्	(प्रथमा)
म्	,,	,,	(द्वितीया)
आ	भ्याम्	भिस्	(तृतीया)
ए	,,	भ्यस्	(चतुर्थी)
अस्	,,	,,	(पञ्चमी)
,,	ओस्	नाम्	(षष्ठी)
आम्	,,	सु	(सप्तमी)
—	औ	अस्	(सम्बोधन)

भूमिम्	भूमी	भूमीः	(द्वि०)	नदीम्	नद्यौ	नदीः
भूम्या	भूमिभ्याम्	भूमिभिः	(तृ०)	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
भूमये-भूम्यै	भूमिभ्याम्	भूमिभ्यः	(च०)	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
भूमेः-भूम्याः	भूमिभ्याम्	भूमिभ्यः	(प०)	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
भूमेः-भूम्याः	भूम्योः	भूमीनाम्	(ष०)	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
भूमौ-भूम्याम्	भूम्योः	भूमिषु	(स०)	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
हे भूमे	हे भूमी	हे भूमयः	(सं०)	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

[एवं मति, गति, रुचि आदि] [एवं जननी वाणी, मही आदि]

उ० स्त्रीलिङ्ग 'धेनु' शब्द । ऊ० स्त्रीलिङ्ग 'वधू' शब्द ।

धेनुः	धेनू	धेनवः	(प्र०)	वधूः	वध्वौ	वध्वः
धेनुम्	धेनू	धेनूः	(द्वि०)	वधूम्	वध्वौ	वधूः
धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः	(तृ०)	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
धेनवे-धेन्वै	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः	(च०)	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
धेनोः-धेन्वाः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः	(प०)	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
धेनोः-धेन्वाः	धेन्वोः	धेनूनाम्	(ष०)	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
धेनौ-धेन्वाम्	धेन्वोः	धेनुषु	(स०)	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः		हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

[एवमेव तनु, रज्जु आदि] [एवमेव श्वश्रू चमू आदि]

ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग मातृ शब्द

(प्र०)	माता	मातरौ	मातरः	(प०)	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
(द्वि०)	मातरम्	मातरौ	मातॄः	(ष०)	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
(तृ०)	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः	(स०)	मातरि	मात्रोः	मातृषु
(च०)	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः	(सं०)	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

[एवमेव—दुहितृ—ननान्दृ—यातृ इत्यादि]

स्वसृ—(भगिनी)

(प्र०) स्वसा स्वसारौ स्वसारः (द्वि०) स्वसारम् स्वसारौ स्वसॄः

इत्यादि (मातृवत्)

इ० पुल्लिङ्ग 'पति' शब्द ।				इ० पुल्लिङ्ग 'सखि' शब्द ।		
पतिः	पती	पतयः	(प्र०)	सखा	सखायौ	सखायः
पतिम्	पती	पतीन्	(द्वि०)	सखायम्	सखायौ	सखीन्
पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः	(तृ०)	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः	(च०)	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः	(पं०)	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पत्युः	पत्योः	पतीनाम्	(ष०)	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
पत्यौ	पत्योः	पतिषु	(स०)	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
हे पते	हे पती	हे पतयः	(सं०)	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

ई० स्त्रीलिङ्ग 'स्त्री' शब्द ।				ई० स्त्रीलिङ्ग 'श्री' शब्द		
स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	(प्र०)	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
स्त्रियम् स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः स्त्रीः	(द्वि०)	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	(तृ०)	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः	(च०)	श्रियै-श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः	(पं०)	श्रियः या	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्	(ष०)	श्रियः या	श्रियोः	श्रियां श्रीणाम्
स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु	(स०)	श्रियां यि	श्रियोः	श्रीषु
हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः	(सं०)	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

('लक्ष्मी', 'तरी' इत्यादि शब्दों के प्रथमा के एकवचन में 'लक्ष्मीः', तरीः आदि होते हैं शेषरूप 'नदी' शब्द के समान होंगे।)

इ० नपुंसक 'दधि' शब्द ।

(प्र०)	दधि	दधिनी	दधीनि	(पं०)	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
(द्वि०)	दधि	दधिनी	दधीनि	(ष०)	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
(तृ०)	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	(स०)	दध्नि दधनि	दध्नोः	दधिषु
(च०)	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभिः	(सं०)	हे दधे धि	हे दधिनी	हे दधीनि

(सक्थि, अस्थि, अक्षि आदि शब्दों के रूप भी इसी प्रकार से होंगे।)

(सर्वनाम शब्द)

'युष्मद्' शब्द — 'अस्मद्' शब्द

त्वम्	युवाम्	यूयम्	(प्र०)	अहम्	आवाम्	वयम्
त्वां त्वा	युवां वां	युष्मान् वः	(द्वि०)	मां मा	आवाम् नौ	अस्मान् नः
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	(तृ०)	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
तुभ्यं ते	युवाभ्यां वां	युष्मभ्यं वः	(च०)	मह्यं मे	आवाभ्यां नौ	अस्मभ्यं नः
त्वत्	युवाभ्यां	युष्मत्	(पं०)	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
तव ते	युवयोः वां	युष्माकं वः	(ष०)	मम मे	आवयोः नौ	अस्माकं नः
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	(स०)	मयि	आवयोः	अस्मासु

'सर्व' शब्द (पुल्लिङ्ग)

(प्र०)	सर्वः	सर्वौ	सर्वे	(पं०)	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
(द्वि०)	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्	(ष०)	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
(तृ०)	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	(स०)	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
(च०)	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः				

'सर्वा' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

(प्र०)	सर्वा	सर्वे	सर्वाः	(पं०)	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
(द्वि०)	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः	(ष०)	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
(तृ०)	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः	(स०)	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
(च०)	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः				

'सर्व' शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

(प्र०)	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	(द्वि०)	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

(शेषरूप पुंल्लिङ्ग सर्व शब्द के समान होंगे।)

'यद्' शब्द (पुंल्लिङ्ग) — 'यद्' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

यः	यौ	ये	(प्र०)	या	ये	याः
यम्	यौ	यान्	(द्वि०)	याम्	ये	याः
येन	याभ्याम्	यैः	(तृ०)	यया	याभ्याम्	याभिः
यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः	(च०)	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः

यस्मात्	याभ्या	येभ्य	(प०)	यस्या	याभ्या	याभ्य
यस्य	ययो	येषां	(ष०)	यस्याः	ययो	यासाम्
यस्मिन्	ययो	येषु	(स०)	यस्यां	ययो॰	यासु

'यद्' शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

(प्र०) यद् ये यानि (द्वि०) यद् ये यानि

(शेषरूप पुल्लिङ्ग 'यद्' शब्द के समान होंगे)

'किम्' शब्द (पुंल्लिङ्ग) 'किम्' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

क	कौ	के	(प्र०)	का	के	का
कम्	कौ	कान्	(द्वि०)	काम्	के	का
केन	काभ्या	कै॰	(तृ०)	कया	काभ्यां	काभि
कस्मै	काभ्या	केभ्यः	(च०)	कस्यै	काभ्यां	काभ्य
कस्मात्	काभ्यां	केभ्य	(प०)	कस्या	काभ्यां	काभ्य
कस्य	कयोः	केषाम्	(ष०)	कस्या	कयो	कासाम्
कस्मिन्	कयो॰	केषु	(स०)	कस्याम्	कयो	कासु

'किम्' शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

(प्र०) किम् के कानि (द्वि०) किम् के कानि

(शेषरूप पुल्लिङ्ग 'सर्व' शब्द के समान होंगे)

['अन्य' विश्व आदि सर्वनाम शब्दों के भी रूप इसी प्रकार जानो]

'एतद्' शब्द (पुल्लिङ्ग)

(प्र०)	एष	एतौ	एते
(द्वि०)	एतम्-एनम्	एतौ-एनौ	एतान्-एनान्
(तृ०)	एतेन-एनेन	एताभ्याम्	एतै
(च०)	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्य
(प०)	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्य
(ष०)	एतस्य	एतयो -एनयो	एतेषाम्
(स०)	एतस्मिन्	एतयो -एनयो	एतेषु

(सर्व-नाम शब्द)

'युष्मद्' शब्द — 'अस्मद्' शब्द

त्वम्	युवाम्	यूयम्	(प्र०)	अहम्	आवाम्	वयम्
त्वां त्वा	युवां वां	युष्मान् वः	(द्वि०)	मां मा	आवाम् नौ	अस्मान् नः
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	(तृ०)	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
तुभ्यं ते	युवाभ्यां वां	युष्मभ्यं वः	(च०)	मह्यं मे	आवाभ्यां नौ	अस्मभ्यं नः
त्वत्	युवाभ्यां	युष्मत्	(पं०)	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
तव ते	युवयोः वां	युष्माकं वः	(ष०)	मम मे	आवयोः नौ	अस्माकं नः
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	(स०)	मयि	आवयोः	अस्मासु

'सर्व' शब्द (पुल्लिङ्ग)

(प्र०)	सर्वः	सर्वौ	सर्वे	(पं०)	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
(द्वि०)	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्	(ष०)	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
(तृ०)	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	(स०)	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
(च०)	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः				

'सर्व' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

(प्र०)	सर्वा	सर्वे	सर्वाः	(पं०)	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
(द्वि०)	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः	(ष०)	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
(तृ०)	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः	(स०)	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
(च०)	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः				

'सर्व' शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

(प्र०)	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	(द्वि०)	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

(शेषरूप पुल्लिङ्ग सर्व शब्द के समान होंगे ।)

'यद्' शब्द (पुल्लिङ्ग) — 'यद्' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

यः	यौ	ये	(प्र०)	या	ये	याः
यम्	यौ	यान्	(द्वि०)	याम्	ये	याः
येन	याभ्याम्	यैः	(तृ०)	यया	याभ्याम्	याभिः
यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः	(च०)	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः

यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः	(पं०)	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
यस्य	ययोः	येषाम्	(ष०)	यस्याः	ययोः	यासाम्
यस्मिन्	ययोः	येषु	(स०)	यस्याम्	ययोः	यासु

'यद्' शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

(प्र०)	यद्	ये	यानि	(द्वि०)	यद्	ये	यानि

(शेषरूप पुंलिङ्ग 'यद्' शब्द के समान होंगे)

'किम्' शब्द (पुंलिङ्ग) — 'किम्' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

कः	कौ	के	(प्र०)	का	के	काः
कम्	कौ	कान्	(द्वि०)	काम्	के	काः
केन	काभ्याम्	कैः	(तृ०)	कया	काभ्याम्	काभिः
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः	(च०)	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः	(पं०)	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
कस्य	कयोः	केषाम्	(ष०)	कस्याः	कयोः	कासाम्
कस्मिन्	कयोः	केषु	(स०)	कस्याम्	कयोः	कासु

'किम्' शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

(प्र०)	किम्	के	कानि	(द्वि०)	किम्	के	कानि

(शेषरूप पुंलिङ्ग 'सर्व' शब्द के समान होंगे)

['अन्य' विश्व आदि सर्वनाम शब्दों के भी रूप इसी प्रकार जानो]

'एतद्' शब्द (पुंलिङ्ग)

(प्र०)	एषः	एतौ	एते
(द्वि०)	एतम्-एनम्	एतौ-एनौ	एतान्-एनान्
(तृ०)	एतेन-एनेन	एताभ्याम्	एतैः
(च०)	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
(पं०)	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
(ष०)	एतस्य	एतयोः-एनयोः	एतेषाम्
(स०)	एतस्मिन्	एतयोः-एनयोः	एतेषु

'एतद्' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

(प्र०)	एषा	एते	एताः
(द्वि०)	एताम् एनाम्	एते-एने	एताः -एनाः
(तृ०)	एतया-एनया	एताभ्याम्	एताभिः
(च०)	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
(पं०)	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
(ष०)	एतस्याः	एतयोः-एनयोः	एतासाम्
(स०)	एतस्याम्	एतयोः -एनयोः	एतासु

'एतद्' शब्द (नपुंसक-लिङ्ग)

(प्र०)	एतद्	एते	एतानि
(द्वि०)	एतद्-एनद्	एते-एने	एतानि एनानि

(शेष रूप पुंलिङ्ग 'एतद्' शब्द के समान होंगे)

'तद्' शब्द (पुंलिङ्ग) — 'तद्' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

सः	तौ	ते	(प्र०)	सा	ते	ताः
तम्	तौ	तान्	(द्वि०)	ताम्	ते	ताः
तेन	ताभ्याम्	तैः	(तृ०)	तया	ताभ्याम्	ताभिः
तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः	(च०)	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः	(पं०)	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
तस्य	तयोः	तेषाम्	(ष०)	तस्याः	तयोः	तासाम्
तस्मिन्	तयोः	तेषु	(स०)	तस्याम्	तयोः	तासु

'तद्' शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

(प्र०)	तद्	ते	तानि
(द्वि०)	तद्	ते	तानि

(शेष रूप पुंलिङ्ग 'तद्' शब्द के समान होते हैं)

तिङन्त प्रकरण

भ्वादिगण

'वद' धातु (परस्मैपद)

लट् लकार (वर्त्तमानकाल) (१)				लङ् लकार (भूतकाल) (२)		
एकवचन	द्विवचन	बहुवचन		एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
वदति	वदत	वदन्ति	(प्र०पु०)	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
वदसि	वदथ	वदथ	(म०पु०)	अवद	अवदतम्	अवदत
वदामि	वदाव	वदाम०	(उ०पु०)	अवदम्	अवदाव	अवदाम

(३) लोट् लकार (आज्ञावाचक)				लिङ् लकार (विधि अर्थ में) (४)		
वदतु (वदतात्)	वदताम्	वदन्तु	(प्र०)	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
वद—(वदतात्)	वदतम्	वदत	(म०)	वदे	वदेतम्	वदेत
वदानि	वदाव	वदाम	(उ०)	वदेयम्	वदेव	वदेम

लृट् लकार (भविष्यत्) (५)			
(प्र०)	वदिष्यति	वदिष्यत	वदिष्यन्ति
(म०)	वदिष्यसि	वदिष्यथ	वदिष्यथ
(उ०)	वदिष्यामि	वदिष्याव	वदिष्याम०

---

(१) वर्तमान काल प्रत्यय				(२) भूतकाल अनद्यतनभूतार्थवाले प्रत्यय			
ति	तस्	अन्ति	(प्र०)	त्	ताम्	अन्	(प्र०)
सि	थस्	थ	(म०)	स्	तम्	त	(म०)
मि	वस्	मस्	(उ०)	अम्	व	म	(उ०)

(३) आज्ञावाचक-विधि, आशीर्वाद और प्रार्थना अर्थ वाले प्रत्यय—
(प्र०) तु, ताम् , अन्तु (म०)—तम् त (उ०) आनि आव आम ।

(४) विधिलिङ्-विधि प्रार्थना आदि अर्थों को सूचित करने वाले प्रत्यय—
(प्र०) ईत् , ईताम् , ईयुस् (म०) ईस् ईतम्, ईत (उ०) ईयम् , ईव, ईम ।

(५) भविष्यत्काल के प्रत्यय
(प्र०) स्यति,स्यत ,स्यन्ति (म०) स्यसि,स्यथ , स्यथ (उ०) स्यामि, स्याव स्याम ।

इडागम किन्ही धातुओं में होता है । सब धातुओं को नहीं होता—

ऊद ऋदन्त यौति रुक्ष्णु शीङ् स्नु नु क्षु श्वि डीङ् श्रिभिः ।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥

इसी प्रकार—रक्ष, त्यज्, नम्, वस्, दह्, पच, पत्, वह्, खन्, शस, भ्रम्, चल्, चर् इत्यादि (१)।

'रम' धातु (आत्मनेपद)

लट् लकार				लङ् लकार		
रमते	रमेते	रमन्ते	(प्र०)	अरमत	अरमेताम्	अरमन्त
रमसे	रमेथे	रमध्वे	(म०)	अरमथाः	अरमेथाम्	अरमध्वम्
रमे	रमावहे	रमामहे	(उ०)	अरमे	अरमावहि	अरमामहि

लृट्लकार (भविष्यत्काल)

(प्र०)	रंस्यते	रंस्येते	रंस्यन्ते
(म०)	रंस्यसे	रंस्येथे	रंस्यध्वे
(उ०)	रंस्ये	रंस्यावहे	रंस्यामहे

ऊकारान्त, ऋकारान्त, यु रु, क्ष्णु, शी, स्नु नु, श्वि, डी, श्रि, वृङ्, वृञ् इन धातुओं में भविष्यत काल 'लृट' लकार में इडागम होता है। अन्य स्वरान्त= स्वर = अच्=अ, इ, उ, लृ, ऋ, ए, ओ, ऐ, औ धातुओं में नहीं होता। यह नियम सब जगह आर्धधातुक लकारों में उपयोग होता है।

(१) (अ) कुछ धातुओं में विकार होता है जैसे-गम् (गच्छति) घ्रा (जिघ्रति) दा (यच्छति) दृश् (पश्यति) पा (पिबति) ध्मा (धमति) स्था (तिष्ठति) दंश (दशति) क्रम् (क्रामति)॥

(आ) किन्हीं धातुओं के अंतिम अक्षर के समीप ह्रस्व स्वर को गुणादेश हो जाता है—क्रुन्द् (क्रोनति) रुह् (रोहति) कुप् (कपति) क्रुश (क्रोशति)।

(इ) किन्हीं धातुओं के अन्तिम स्वर को गुणादेश हो जाता है—भू (भवति)। जि (जयति) नी (नयति) द्रु (द्रवति) सृ (सरति) हृ (हरति) स्मृ (स्मरति)।

(ई) किन्हीं धातुओं के स्वर में कोई विकार नहीं होता—निन्द (निन्दति) कूज् (कूजति) चूष् (चूषति) खाद् (खादति) क्रीड् (क्रीडति) जीव (जीवति) धाव (धावति)।

(उ) किन्हीं धातुओं के स्वर में 'अय्' आय, आदि का विकार होता है—ह्वे (ह्वयति) गै (गायति) ग्लै (ग्लायति) ध्यै (ध्यायति) म्लै (म्लायति)।

दिवादिगण (१)

'नृत्' धातु (परस्मैपद)				'मन्' धातु (आत्मनेपद) (२)		
लट्—नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति	(प्र०)	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ	(म०)	मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः	(उ०)	मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे
लङ्—अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्	(प्र०)	अमन्यत	अमन्येताम्	अमन्यन्त
अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत	(म०)	अमन्यथाः	अमन्येथाम्	अमन्यध्वम्
अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम	(उ०)	अमन्ये	अमन्यावहि	अमन्यामहि
लोट्—नृत्यतु-तात्	नृत्यताम्	नृत्यन्तु	(प्र०)	मन्यताम्	मन्येताम्	मन्यन्ताम्
नृत्य-तात्	नृत्यतम्	नृत्यत	(म०)	मन्यस्व	मन्येथाम्	मन्यध्वम्
नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम	(उ०)	मन्यै	मन्यावहै	मन्यामहै
लिङ्—नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः	(प्र०)	मन्येत	मन्येयाताम्	मन्येरन्
नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत	(म०)	मन्येथाः	मन्येयाथाम्	मन्येध्वम्
नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम	(उ०)	मन्येय	मन्येवहि	मन्येमहि
लृट्—नर्तिष्यति	नर्तिष्यतः	नर्तिष्यन्ति	(प्र०)	मंस्यते	मंस्येते	मंस्यन्ते
नर्तिष्यसि	नर्तिष्यथः	नर्तिष्यथ	(म०)	मंस्यसे	मंस्येथे	मंस्यध्वे
नर्तिष्यामि	नर्तिष्यावः	नर्तिष्यामः	(उ०)	मंस्ये	मंस्यावहे	मंस्यामहे
पक्षे—नर्त्स्यति	नर्त्स्यतः	नर्त्स्यन्ति	(प्र०)			
नर्त्स्यसि	नर्त्स्यथः	नर्त्स्यथ	(म०)			
नर्त्स्यामि	नर्त्स्यावः	नर्त्स्यामः	(उ०)			

---

(१) इस गण में धातु के स्वर को गुणादेश नहीं होता।

(२) वर्तमानकाल-प्रत्यय—(आ०) भूतकाल-प्रत्यय—(आ०)

(प्र०)	ते	इते	अन्ते	(प्र०)	त	इताम्	अन्त
(म०)	से	इथे	ध्वे	(म०)	थाः	इथाम्	ध्वम्
(उ०)	इ	वहे	महे	(उ०)	इ	वहि	महि

आज्ञावाचक-प्रत्यय (आ०) विध्यर्थप्रत्यय (आ०) भविष्यदर्थप्रत्यय (आ०)

(प्र०)	ताम्	इताम्	अन्ताम्	ईत	ईयाताम्	ईरन्	स्यते	स्येते	स्यन्ते
(म०)	स्व	इथाम्	ध्वम्	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
(उ०)	ऐ	आवहै	आमहै	ईय	ईवहि	ईमहि	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

'अस्' धातु (परस्मैपद)

लट्लकार				लङ्लकार		
अस्ति	स्तः	सन्ति	(प्र०)	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
असि	स्थः	स्थ	(म०)	आसीः	आस्तम्	आस्त
अस्मि	स्वः	स्मः	(उ०)	आसम्	आस्व	आस्म

लोट्लकार				लिङ्लकार		
अस्तु-स्तात्	स्ताम्	सन्तु	(प्र०)	स्यात्	स्याताम्	स्युः
एधि-स्तात्	स्तम्	स्त	(म०)	स्याः	स्यातम्	स्यात
असानि	असाव	असाम	(उ०)	स्याम्	स्याव	स्याम

	'श्रु' धातु				'कृ' धातु		
लट्-	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	(प्र०)	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	(म०)	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
	शृणोमि	शृणुवः / शृण्वः	शृणुमः / शृण्मः	(उ०)	करोमि	कुर्वः	कुर्मः
लङ्-	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्	(प्र०)	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
	अशृणवम्	अशृणुव / अशृण्व	अशृणुम / अशृण्म	(उ०)	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

(आ) कुछ धातुएँ विकृत होती हैं, जैसे—प्री (प्रीणयति-ते) मृज (मार्जयति-ते) धू (धूनयति ते) कृत् (कीर्तयति-ते)।

(इ) किन्हीं धातुओं के उपधा को गुणादेश होता है। उपध—'अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा' अंतिम अल अक्षर के पूर्व जो हो उसे उपधा कहते हैं। जैसे—

चुर् (चोरयति-ते) घुष (घोषयति-ते) चुद् (चोदयति-ते) तुल् (तोलयति)।

(ई) अन्तिम अक्षर के समीप जो अक्षर धातुओं में हों उनकी वृद्धि होती है, जैसे—क्षल् (क्षालयति ते) तड् (ताडयति ते) धृ (धारयति-ते) जॄ (जारयति ते)।

(उ) अकर्मक धातुओं के प्रयोजक रूप विद् (वेदयति ते) युज् (योजयति-ते) तुष् (तोषयति ते) नन्द् (नादयति-ते) मृ (मारयति-ते) स्था (स्थापयति-ते) दृश् (दर्शयति-ते) वृध् (वर्धयति-ते) छिद् (छिदयति-ते)।

लोट्—

शृणोतु-तात्	शृणुताम्	शृण्वन्तु	(प्र०)	करोतु कुरुतात्	कुरुताम्	कुर्वन्तु
शृणु तात्	शृणुतम्	शृणुत	(म०)	कुरु-तात्	कुरुतम्	कुरुत
शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम	(उ०)	करवाणि	करवाव	करवाम

लिङ्—

शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः	(प्र०)	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात	(म०)	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम	(उ०)	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

'श्वस्' धातु परस्मैपद

लट्—

श्वसिति	श्वसितः	श्वसन्ति	(प्र०)
श्वसिषि	श्वसिथः	श्वसिथ	(म०)
श्वसिमि	श्वसिवः	श्वसिमः	(उ०)

लङ्—

अश्वसत् / अश्वसीत्	अश्वसिताम्	अश्वसन्	(प्र०)
अश्वसः / अश्वसीः	अश्वसितम्	अश्वसित	(म०)
अश्वसम्	अश्वसिव	अश्वसिम	(उ०)

लोट्—

श्वसितु-तात्	श्वसिताम्	श्वसन्तु	(प्र०)
श्वसिहि-तात्	श्वसितम्	श्वसित	(म०)
श्वसानि	श्वसाव	श्वसाम	(उ०)

लिङ्—

श्वस्यात्	श्वस्याताम्	श्वस्युः	(प्र०)
श्वस्याः	श्वस्यातम्	श्वस्यात	(म०)
श्वस्याम्	श्वस्याव	श्वस्याम	(उ०)

'ज्ञा' धातु परस्मैपद

लट्—

जानाति	जानीतः	जानन्ति	(प्र०)
जानासि	जानीथः	जानीथ	(म०)
जानामि	जानीवः	जानीमः	(उ०)

लङ्—

अजानात्	अजानीताम्	अजानन्	(प्र०)
अजानाः	अजानीतम्	अजानीत	(म०)
अजानाम्	अजानीव	अजानीम	(उ०)

इसी प्रकार स्वप् (स्वपिति) रुद् (रोदिमि, रोदिव , रोदिम)।

(कर्म और भाव में)

[रक्ष्-रक्ष्यते, भूष्-भूष्यते, विद्-विद्यते, नी-नीयते, जि-जीयते, भू-भूय॰ कृ-क्रियते, हृ-ह्रियते, मृ-म्रियते, भृ-भ्रियते, स्था-स्थीयते, दा-दीयते, पा पीयते, दृश-दृश्यते, गम्-गम्यते, बुध्-बुध्यते, क्षिप्-क्षिप्यते, त्यज्-त्यज्य॰ रम्-रम्यते, मन्-मन्यते, चुर्-चोर्यते, तड्-ताड्यते, तुल्-तोल्यते]

धातु + 'य' + आत्मनेपद-प्रत्यय

—:०:—